मणिपुर

मणिपुर

राज्य के भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक पक्षों पर प्रकाश डालने वाली पुस्तक

लेखक
डॉ० जगमल सिंह

सम्पादक-मण्डल

श्री गंगाशरण सिंह   श्री शंकरराव लोंढे
श्री रामलाल परीख   श्री जगदीश शर्मा



अखिल भारतीय हिन्दी संस्था संघ
नई दिल्ली

मणिपुर

प्रकाशक श्री रामलाल परीख
सचिव
अखिल भारतीय हिन्दी संस्था संघ
34, कोटला मार्ग,
नई दिल्ली-110 002

प्रकाशन वर्ष : 1988

मूल्य : 24.00 रुपये

मुद्रक पाराशर प्रिण्टर्स, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

MANIPUR
Published by AKHIL BHARATIYA HINDI SANSTHA SANGH
34 Kotla Marg New Delhi-110 002

Price Rs 24/-

भूमिका

भारत एक विशाल देश है। यहाँ पर अनेक धर्मों एवं जातियों के लोग रहते हैं। यहाँ अनेक भाषाएँ तथा बोलियाँ बोली और समझी जाती हैं। हर प्रदेश एवं जाति की अपनी-अपनी सांस्कृतिक, सामाजिक परम्पराएँ है जो एक धरोहर के रूप मे विराजमान हैं। इस विशाल भारत मे अनेक भाषाओं, बोलियो, सांस्कृतिक, सामाजिक रीति-रिवाजो के होने पर भी भारत के सभी लोग भावात्मक एकता में बंधे हुए हैं। विभिन्नता मे एकता यहाँ की बड़ी विशेषता है। भारत पर जब भी बाहरी संकट आये तब जनता के सभी वर्गो ने सदैव एक होकर देश की कठिनाइयो का सामना किया है। चाहे कठिनाइयाँ बाहरी आक्रमण के कारण हो या देवी प्रकोप के कारण, जनता ने सदैव एक होकर उनका सामना किया है। आज के वैज्ञानिक युग ने देश, प्रदेश काल समाज की सीमाओ को उन्मुक्त कर दिया है। समाज में एक दूसरे को जानने, समझने की प्रवृत्ति बलवती होती जा रही है। भारत के विभिन्न प्रदेशों में अनेक जातियाँ, जनजातियाँ रहती हैं, जिनकी अपनी-अपनी बोलियाँ, रीति-रिवाज, धार्मिक सांस्कृतिक परम्पराएं हैं, उनकी जानकारी देश के अन्य भागो के लोगों को मिलनी आज की परिस्थिति मे बहुत आवश्यक और महत्वपूर्ण है। भारत की भावात्मक एकता एवं सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ बनाने, उसके साथ सामाजिक समन्वय लाने के लिए उन क्षेत्रो के धार्मिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमो की जानकारी आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सघ की ओर से ऐसे क्षेत्रो मे जहाँ की भाषाएँ और बोलियाँ अलग-अलग हैं उनके रीति रिवाजो, धार्मिक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमो को देवनागरी लिपि में प्रकाशित करने की योजना बनाई गई है। इस योजना के अन्तर्गत पूर्वांचल के मेघालय, अरुणाचल, मिजोरम, नागालैण्ड तथा मणिपुर प्रदेश के सम्बन्ध मे आवश्यक जानकारी देने के लिए पुस्तकें तैयार की गई हैं। इन राज्यों के लोगों के पास भव्य सांस्कृतिक धरोहर है। इनकी पौराणिक कथाएं, किवदन्तियाँ, कहावतें तथा मान्यताएं आश्चर्य चकित करने वाली हैं। प्रत्येक पुस्तक मे प्रदेश की भौगोलिक स्थिति, इतिहास, जातियाँ, उनकी बोलियाँ, रीति-रिवाज, संस्कृति, खेती, उद्योग धन्धे, पर्यटन स्थल तथा परियोजनाओ आदि का विवरण दिया गया है। यद्यपि प्रदेशों का

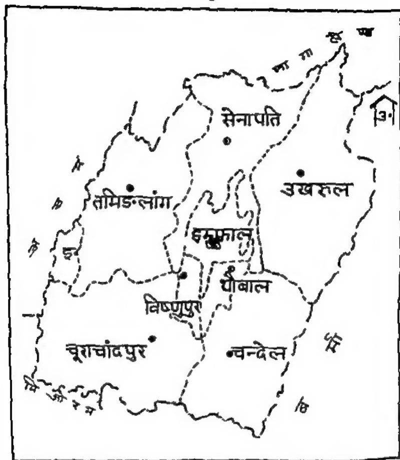
यहाँ संक्षिप्त विवरण ही दिया गया है, फिर भी उस प्रदेश की एक झांकी का चित्रण हिन्दी माध्यम से प्राप्त हो सकेगा ऐसी आशा है। इन प्रदेशों के बारे में जानकारी मिलेगी। इस प्रकार की पुस्तकों के द्वारा राष्ट्रीय भावात्मक एकता को सुदृढ़ करने और उन क्षेत्रों से समन्वय स्थापित करने का हमारा प्रयास है।

संघ की इस योजना के सफल होने पर देश की अनेकों ऐसी जन जातियों के रीति-रिवाजों, धार्मिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में अलग अलग पुस्तकें तैयार करने की योजना है। इन प्रदेशों के बारे में पुस्तकें तैयार करने तथा प्रकाशित कराने के लिए शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार ने आर्थिक सहायता प्रदान कर जो सहयोग दिया है, उसके लिए संघ शिक्षा मंत्रालय का आभार प्रकट करता है। मणिपुर पुस्तक की सामग्री तैयार करने में डा जगमल सिंह, उपाचार्य हिन्दी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, मणिपुर ने जो सहयोग दिया है उसके लिए संघ उनके प्रति आभार प्रकट करता है। पुस्तक की सामग्री का सम्पादन करने के लिए सम्पादक मण्डल ने जो सहयोग दिया संघ उनके प्रति आभार प्रकट करता है। आशा है पाठकों को इस पुस्तक से प्रदेश के बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त होगी।

रामलाल परीख
सचिव

अनुक्रमणिका

मणिपुर



क्षेत्रफल 22,327 वर्ग कि मी , कृषि योग्य भूमि 2.1 लाख हेक्टयर,
जनसंख्या 14, 20 953, साक्षरता 41 33, महिला साक्षरता 30 69
जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग कि मी 64 चौथी योजना व्यय 31 करोड रुपये
सातवीं योजना व्यय-430 करोड रुपये ।

मणिपुर : एक दृष्टि में

मणिपुर का क्षेत्रफल —22,327 वर्ग किलो मीटर। यह भारत के क्षेत्रफल का 0.7% है।

जनसख्या : 1981 की जनगणना के अनुसार यह, 14,20,953 है। इसमें 3,87, 977।

जनजाति तथा अनुसूचित जाति की जनसख्या 17,753 है। मैंते जाति की सख्या सबसे अधिक है जो मणिपुरी भाषा बोलती है। पहाड़ी क्षेत्रो मे 29 विभिन्न जनजातियाँ रहती हैं। इन्हे मुख्यत. नागा तथा कुकी-चिन भागो मे बाटा जा सकता है। यहाँ पर जन सख्या का घनत्व 24 से 415 प्रति किलो मीटर तक है। ग्रामीण अचलो में 73 6% जनसख्या निवास करती है।

मणिपुर की दक्षिणी पूर्वी सीमा बर्मा से लगती है तथा उत्तरी, दक्षिणी तथा पश्चिमी सीमा नागालैण्ड, मिजोरम तथा आसाम से लगती है।

यहाँ शैक्षिक प्रतिशत 41.35 है जबकि भारत का शैक्षिक औसत 36% है।

मणिपुर के जिले—	8
उपमण्डल —	24
जनजाति विकास	30
समुदाय-ब्लाक 1986	
म्युनिसिपल समिति—	8

स्वास्थ्य एवं चिकित्सा

स्वास्थ्य का जनता के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। इस तथ्य को दृष्टि में रखकर राज्य स्वास्थ्य विभाग की ओर से स्वास्थ्य योजनाए एव कार्यक्रम अपनाए जा रहे हैं जिससे समाज के सभी वर्गों तथा सभी क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाए उपलब्ध हो सकें। राज्य में प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाए तथा आवश्यक न्यूनतम चिकित्सा कार्यक्रमो को प्रमुखता दी गई है जिसके परिणाम स्वरूप जहा 1981 में मृत्युदर प्रति हजार जनसख्या के पीछे मृत्युदर 12 5 थी वह अब घटकर 6 8 हो गई है। दिसम्बर 1986 तक मणिपुर राज्य में 445 चिकित्सा सस्थाएं थी। मणिपुर मे 1965 मे जिला परिवार नियोजन ब्यूरो इम्फाल में था। 1975 में यह केन्द्र राज्य परिवार कल्याण ब्यूरो के रूप में परिवर्तित किया गया। 1984-85 मे परिवार नियोजन कार्यक्रम के अन्तर्गत 50 लाख रुपयो का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

कृषि

कृषि यहाँ का मुख्य व्यवसाय है। कृषि में नये साधनों तथा तकनीक को अपनाया जा रहा है जिसके परिणाम स्वरूप राज्य ने कृषि के क्षेत्र में विशेष उन्नति की है। पूर्वी क्षेत्रो मे मणिपुर राज्य सबसे अधिक प्रति हेक्टेयर कृषि उपज पैदा करता है। धान यहाँ की मुख्य उपज है। सिचाई साधनो में की गई उल्लेखनीय बढ़ोतरी के कारण जहाँ 1985 में 6500 हेक्टेयर 1986 में 8500 हेक्टेयर भूमि मे धान उगाया गया वही 1987 मे 17,303 हेक्टेयर भूमि में धानकी उपज की गई। प्रति एक हेक्टेयर 2,5 टन धान का उत्पादन हुआ।

इसके साथ 1985-86 मे जहाँ दालों का उत्पादन 8500 टन था वही 1986-87 में बढ़कर 13000 टन तक पहुच गया।

सिचाई

चतुर्थ पचवर्षीय योजना में लोकत्ताक सिचाई परियोजना का निर्माण किया गया। यह भारत की बडी परियोजनाओं में से एक है तथा उत्तरी पूर्वी क्षेत्र की यह पहली बडी सिचाई परियोजना है। इसके अतिरिक्त, बडी तथा मध्यम दोनों प्रकार की परियोजनाओ पर कार्य चालू है। इनके शीघ्र ही पूरे होने की आशा

है। 1986-87 तक परियोजनाओ के द्वारा 5000 हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की व्यवस्था की गई। इनके साथ 17 और परियोजनाओ को हाथ मे लिया गया था।

ऊर्जा

अगस्त 1984 में लोकत्तम हाइड्रो इलैक्ट्रिक प्रौजेक्ट के निर्माण से इस दिशा मे प्रगति हुई है। प्रथम पचवर्षीययोजना मे जहाँ 0 165 किलोवाट बिजली का उत्पादन होता था वही छोटी पचवर्षीय योजना के अन्त मे बिजली का उत्पादन 24 270 किलो वाट हो गया। बिजली का अधिकतर उपयोग लघु उद्योग एव सिंचाई के लिए किया जाता है। गेलनेल, सेभालोम तरे तथा थूनिग परियोजनाओ में अच्छी प्रगति हो रही है। सन् 1987 तक राज्य के 789 ग्रामो का विद्युतिकरण किया जा चुका है।

वन

छठी पचवर्षीय योजना में 6390 हेक्टेयर भूमि में वृक्षारोपण किया गया। सातवी पचवर्षीय योजना मे 8350 हेक्टेयर भूमि को वृक्षा रोपण का लक्ष्य रखा गया है। अब तक दो सालो मे 3025 हेक्टेयर भूमि मे वृक्षारोपण किया जा चुका है। राज्य मे रबड के वृक्ष लगाने का भी काम किया जा रहा है जिससे जनजाति के लोगो को एक स्थाई रोजगार मिल सकेगा। झूम नियत्रण योजना के अन्तर्गत छठी पचवर्षीय योजना मे 9255 हेक्टेयर भूमि पर काम किया गया।

परिवहन तथा संचार

मणिपुर एक पहाडी राज्य है जिसके कारण यहाँ सस्ती परिवहन व्यवस्था करना सभव नही है। यहाँ सडक तथा नदियो के द्वारा यातायात की व्यवस्था की जाती है। दिल्ली और कलकत्ता से वायुयान की सुविधा है। सडक परिवहन एव सामान लाने ले जाने के लिए मणिपुर राज्य सडक यातायात निगम तथा निजी क्षेत्रो की ओर से भी सडक परिवहन व्यवस्था है। 1984-85 में निगम ने 4735 किलो मीटर मार्ग में परिवहन की व्यवस्था की जबकि यह पहली पचवर्षीय योजना मे केवल 534 किलो मीटर मे सडक परिवहन की व्यवस्था थी।

राज्य में परिवहन व्यवस्था की स्थिति बड़ी दयनीय है। राष्ट्रीय राजमार्ग न 39 और 53 के द्वारा ही राज्य का संबंध देश से जुड़ता है। पहली पंचवर्षीय योजना में 959 8 किलो मीटर सड़क थी और 1985-86 में यह 4364 1 किलो मीटर हो गई। सातवीं पंचवर्षीय योजना में 4754 किलो मीटर सड़क निर्माण का लक्ष्य रखा गया है। पुराने लकड़ी के पुलों को हटा कर नये पक्के पुलों का निर्माण किया जा रहा है।

शिक्षा

स्वतन्त्रता के बाद से मणिपुर में शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। 1901 में यहां साक्षरता का औसत 1% था। वही 1981 में बढ़कर 41% हो गया जबकि भारत का साक्षरता औसत 36% है। छठी पंचवर्षीय योजना में प्राथमिक शिक्षा के लिए 6 से 14 साल के 1,17,500 बच्चों को प्रवेश दिया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना में 63,100 बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देने की व्यवस्था का लक्ष्य रखा गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना में नई शिक्षा नीति के अधीन विशेष स्कूल-नवोदय विद्यालय राज्य के प्रत्येक जिले में स्थापित किये जाएंगे। कम्प्यूटर शिक्षण कार्यक्रम को चुने हुए विद्यालयों में लागू किया जाएगा। मणिपुर में केवल एक विश्वविद्यालय है जो इम्फाल में है।

पर्यटन

मणिपुर को भारत का स्वीट्जरलैण्ड, 'ए ज्वैल आफ इण्डिया' कहा गया है। मणिपुर का साहित्यिक अर्थ मणि भूमि है। 1972-73 में पर्यटन निदेशालय की स्थापना की गई। राज्य के ऐतिहासिक, धार्मिक तथा अन्य मुख्य स्थानों पर पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न कार्यक्रम बनाए जा रहे हैं। होटल इम्फाल अशोक का निर्माण किया गया। मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में पर्यटन सलाहकार बोर्ड का गठन किया गया है। आशा है इससे पर्यटन को बढ़ावा मिलेगा।

भौगोलिक परिचय

मणिपुर भारत की उत्तरी पूर्वी सीमा पर स्थित छोटा-सा राज्य है जिसका क्षेत्रफल 22,356 वर्ग कि० मी० है । मणिपुर का लगभग 90% भाग पर्वतों से घिरा है जबकि घाटी का मैदानी भाग कुल क्षेत्रफल का 10% भाग है । सन् 1981 ई० की जनगणना के अनुसार मणिपुर की जन संख्या 14 33,691 है । कुल जनसंख्या का दो-तिहाई भाग मणिपुर की घाटी में रहता है, जबकि पर्वतो में शेष भाग । प्रकृति ने मणिपुर को दो भागो में बांट दिया है । मणिपुर की घाटी की ऊँचाई 800 से 1000 मीटर है, जबकि सबसे ऊँची पर्वत शृंखला की समुद्रतल से ऊँचाई लगभग 2,831 मीटर है । मणिपुर का मध्य भाग मणिपुर की घाटी है, जो समतल है किन्तु इसका कुल क्षेत्रफल 1,800 वर्ग कि० मी० ही है । मणिपुर की पश्चिमी पर्वत शृंखला के पीछे 250 वर्ग कि० मी० का छोटा-सा मैदान है जिसको बराक नदी बेसिन कहा जाता है । यह सूरमा घाटी (कछार-असम) का ही विस्तार है ।

मणिपुर के उत्तर मे नागालैंड, पश्चिम में असम तथा दक्षिण मे मिजोरम और पूर्व मे बर्मा स्थित है । यदि हम भारत के मानचित्र मे देख तो यह छोटा सा राज्य 23 50 से 25.41 उत्तरी अक्षांश तथा 93 2 से 94 47 पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है । पर्वत शृंखला की ऊँचाई उत्तर की ओर अधिक है और दक्षिण की तरफ यह ऊँचाई घटती चली जाती है । मणिपुर की पर्वत शृंखलाएँ उत्तर पूर्वी हिमालय की शाखाएँ हैं जो मणिपुर के उत्तर से होती हुई दक्षिण पूर्व की ओर बर्मा मे अराकान योमा तक तथा मिजो पर्वतों से गुजरती हुई बगाल की खाडी में जाकर मिलती हैं ।

जल प्रवाह प्रणाली · नदियाँ एव झीलें

मणिपुर की नदियो और जल प्रवाह प्रणाली को तीन भागों में विभक्त किया जाता है :

बराक प्रणाली : बराक और इसकी सहायक इराङ मक्क, तुइवाइ (तिपाई) और जिरि नदियाँ राज्य के उत्तर पश्चिमी पर्वतीय भागों में बहती हैं और गंगा-ब्रह्मपुत्र जल प्रवाह में मिलकर बंगाल की खाड़ी में जाकर गिरती हैं।

चिदविन प्रणाली : मणिपुर की पूर्वी पर्वत शृंखला से निकलकर पूर्वी ढाल में बहती हुई अकोह-लोक (लानिये) तथा इसकी सहायक चिहाइ तथा थामू यू और इसकी सहायक मावलोइ, लुयाइजी, लोकचाओ, लालिमलोक, तुइयाङ, नदियाँ दक्षिण पूर्व में बहती हुई कबाओ घाटी से होती हुई चिदविन नदी में जा मिलती हैं। चिदविन नदी केवल चिदविन प्रणाली की नदियों का ही नहीं मणिपुर प्रणाली की नदियों का जल भी ग्रहण करती है और इरावदी नदी में जाकर मिलती है जो अंडमान सागर में गिरती है।

मणिपुर प्रणाली : इम्फाल नदी काङपोकपी के उत्तर की पर्वत शृंखला से निकलती है और दक्षिण की ओर लोकताक की ओर बहती है परन्तु गिरती नहीं है। इरिल और थोबाल नदियाँ घाटी के उत्तर पूर्वी पर्वत शृंखला से निकलती है तथा लिलोङ में और मयाङ इम्फाल में इम्फाल नदी में मिलती हैं। इम्फाल के उत्तर पश्चिम के पर्वतों से नम्बूल तथा नम्बोल नदियाँ निकलती हैं और लोकताक में गिरती हैं। लोकताक में जब जल अधिक होकर बहता है तो कारतक जलधारा बनती है जो इम्फाल नदी में मिल जाती है जिसे मणिपुर या अथोबा नदी कहते हैं। सूडा लिहुघाट पर्वतमाला से निकलकर दक्षिण से उत्तर की ओर बहती हुई मणिपुर नदी से इथाइ नामक स्थान पर आकर मिलती है। मणिपुर की पूर्वी पर्वत माला से चकपी नदी निकलती है और यह मणिपुर नदी में सुगनू नामक स्थान पर मिलती है। सुगनू के बाद मणिपुर नदी मणिपुर की पूर्वी एवं पश्चिमी शृंखला को विभाजित करती हुई क्यिरथा नदी में मिलती है। क्यिरथा चिदविन की एक सहायक नदी है।

झीलें

मणिपुर की घाटी के दक्षिणी भाग में कई झीलें हैं जिनमें से बड़ी और प्रमुख झील लोकताक है। वर्षा ऋतु में इसका क्षेत्रफल 104 कि० मी० हो जाता है जबकि शेष समय इसका क्षेत्रफल 65 कि० मी० ही रह जाता है। 12 8 कि० मी० की यह चौड़ी छिछली झील है जिसमें जल वनस्पति की अधिकता है। थाङा, इथिङ और कराङ नामक द्वीप इस झील में हैं। झील के दक्षिण में कंबुल लामजाओ नामक आरण्यक है जिसमें संसार का दुर्लभ प्राणी संघाई नामक हिरन पाया जाता है जिसके सींग बारह सींगे जैसे होते हैं। इस झील के पानी पर आधारित लोकताक बहुमुखी योजना बनी है जिससे जल

विद्युत उत्पन्न की जा रही है।

वाइथो, इकोप, खरूङपात और पुमलेन नामक झीलें इम्फाल नदी के पूर्व में स्थित हैं, जबकि लोकताक पश्चिम में। ये सब झीलें मणिपुर के थोबाल जिले में हैं।



लोकताक झील का एक परिदृश्य — झील के तैरते द्वीप

इसके अतिरिक्त भी घाटी क्षेत्र में अनेक जलाशय हैं, जिन्हें स्थानीय भाषा में पात कहा जाता है। उमरपात, सनापात, नमुपात, सेलिरम्पात, उरकमपात, योरबुङ व लमजेलपात नामक जलाशय प्रसिद्ध हैं। इन सबमें मछली पालन का धन्धा किया जाता है और वर्षा ऋतु के बाद जल सूखने पर उस भूमि पर कृषि की जाती है।

भूगर्भ विज्ञान वेत्ताओं के अनुसार मणिपुर, कछार, त्रिपुरा व नागा पर्वत श्रृंखलाएं समुद्री क्षेत्र था। भौगोलिक परिवर्तनों के कारण समतल ऊपर उभर आया है।

जलवायु

कर्क रेखा मणिपुर को दो भागों में विभाजित करती है किन्तु मणिपुर का जलवायु उष्ण नहीं है क्योंकि समुद्रतल से मणिपुर की ऊँचाई काफी है। मणिपुर की घाटी की जलवायु तो वातानुकूलित है। पर्वतों [illegible] नीचे और पर्वतों पर तो हिल स्टेशन जैसा जलवायु रहता है। हाँ, मणिपुर के पश्चिमी भाग जिरिबाम व मोरे दक्षिणी क्षेत्र अवश्य इसके अपवाद हैं, जहाँ पर्याप्त गर्मी पड़ती है। वास्तव में इसका कारण समुद्रतल से ऊँचाई है, जिसके कारण मणिपुर का अधिकांश हिस्सा ठण्डा रहता है। वर्षा ऋतु यहाँ भारत के अन्य भागों से अपेक्षाकृत लम्बी होती है। मार्च-अप्रैल से आरम्भ होकर सितम्बर-अक्टूबर तक वर्षा ऋतु मानी जा सकती है। शीतकाल में पर्वतों को छोड़कर शीत की अधिकता का अभाव रहता है। ग्रीष्म ऋतु में दिन के समय अवश्य ही सूर्य कभी अपना प्रखर रूप दिखाता है किन्तु कुछ ही समय की धूप के पश्चात वर्षा हो जाती है। विगत बीस वर्षों में जंगल नष्ट किए जाने के कारण मणिपुर की जलवायु पर विषम प्रभाव अवश्य पड़ा है और इसके फलस्वरूप गर्मी बढ़ गई है और औसत वर्षा में भी कमी आई है। शीत ऋतु अक्टूबर से फरवरी तक मानी जाती है। ग्रीष्म ऋतु में भी सूर्य का ताप अधिक नहीं होता तथा शीतल एवं मंद पवन मनुष्य को गर्मी का अनुभव ही नहीं होने देता है। मणिपुर की जलवायु स्वास्थ्यवर्द्धक तथा मौसम सदा सुहावना रहता है।

पर्वत शिखरों पर बादल मंडराते रहते हैं। घाटी में और पर्वतीय क्षेत्रों में प्रातःकाल कोहरा छाया रहता है। रात्रि के समय जब बादल नहीं होते आकाश स्वच्छ रहता है, किन्तु वर्षा ऋतु में कई दिन तक सूर्य या चांद-तारों के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं। 1034 मिलीमीटर औसत वर्षा यहां साल भर में होती है। अधिक तापमान 33° सेल्सिएस और न्यूनतम 2 8° सेल्सिएस है। वर्ष का सबसे ठंडा महीना जनवरी और गर्म जुलाई होता है। तमिंगलोंग में 400 सी० एम० वार्षिक वर्षा होती है।

वर्ष के आधे समय में हवाएँ उत्तर पूर्व दिशा में चलती हैं तथा आधे समय में दक्षिण पश्चिम दिशा में। मणिपुर में प्रमुख रूप से चार ऋतुएँ मानी जाती हैं उत्तरी पूर्वी मानसून के समय :

1 शीत ऋतु (दिसम्बर से फरवरी)
2 ग्रीष्म ऋतु (मार्च से अप्रैल)
दक्षिण पश्चिम मानसून के समय
1. वर्षा ऋतु (मई से सितम्बर)

2. लौटते हुए मानसून का समय (अक्टूबर से नवम्बर)

शीत ऋतु मे कभी-कभी राज्य के ऊंचे पर्वतीय भाग मे तापमान जमाव बिन्दु से एक दो डिग्री नीचे भी चला जाता है। इस ऋतु म उत्तर पूर्वी हवाएँ चलती रहती हैं। कभी-कभी 7 सें० मी० तक वर्षा भी हो जाती है, जो फसल के लिए वरदान होती है। इस ऋतु मे घाटी व पर्वतो पर प्रात काल कोहरा छाया रहता है।

ग्रीष्म ऋतु मे तापमान अचानक बढ जाता है और कभी-कभी गरज के साथ वर्षा होती है और ओले भी गिरते हैं। सुबह शाम का समय बहुत ही सुहावना होता है, किन्तु दिन में तेज धूप भी होती है और बादल भी छाए रहते हैं। उत्तर पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर-पूर्व दिशा से आन वाली हवाओ के साथ घोर गर्जन के साथ बोछारें अक्सर दोपहर बाद एव सध्या समय होती हैं। बसन्त ऋतु भी इसी का अग है। वर्षा ऋतु मे हवाएँ व वर्षा तापमान को बढने नहीं देती हैं। सितम्बर मे वर्षा कम होती है और तापमान गिरना शुरू होता है। सितम्बर से नवम्बर महीने के दौरान सबसे सुहावना मौसम रहता है।

ऐतिहासिक परिचय

मणिपुर का प्राचीन इतिहास कालकवलित हो चुका है। मणिपुरी भाषा में लिखे गए पुया (पुराण ग्रन्थों) में मणिपुर के विषय में अनेक दृष्टि से संबंधित विवरण उपलब्ध हैं जिनका पुस्तक में अन्यत्र उल्लेख हुआ है। महाभारत और श्रीमद्भागवत् में मणिपुर पर गंधर्व वंशी राजा चित्रवाहन के शासन का उल्लेख मिलता है। जब पांडव अज्ञातवास काल में मणिपुर आए थे तो, उस समय चित्रवाहन की पुत्री चित्रांगदा का विवाह, अर्जुन से हुआ और अर्जुन पुत्र बभ्रुवाहन मणिपुर का राजा बना था। श्रीमद्भागवत् में लिखा है

इरावन्तमुलूप्यां वै सुतायां बभ्रुवाहनम्।
मणिपूरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः ॥9/22/32

अर्थात्—उलूपी के गर्भ से इरावान और मणिपुर नरेश की पुत्री से बभ्रु-वाहन का जन्म हुआ क्योंकि पहले से ही यह बात तय हो चुकी थी।

महाभारत के आदि पर्व तथा आश्वमेधिक पर्व में मणिपुर के राजा सदा अपने को अर्जुन का वंशज मानते आए हैं। संप्रति इस सिद्धान्त का अवरोध किया जा रहा है। श्रीमद्भागवत् में वर्णित मणिपुर को भिन्न सिद्ध करने का प्रयत्न चल रहा है। मणिपुर की घाटी में कभी सात वंशों का राज्य था, जो संभवतः विभिन्न स्थानों से आकर यहाँ बसे थे। खुमान लुवाङ मोइराङ मैतै (निंगथौजा) अङोम, खा ङनबा तथा चेङलैसालाबा। इन सातों में आपस में युद्ध होते रहे और अंत में मैतै वंश ने इन पर विजय प्राप्त कर ली थी। इनके राज्य ग्रीस के सिटी स्टेट्स या भारत के गणों जैसे थे। इन विभिन्न गणों को एक करने वाला मैतै या निङथौजा वंश था जिसने मणिपुर को एक राज्य बनाया था।

मणिपुर के पुया ग्रंथों के आधार पर अतिया गुरु सिदबा तथा देवी लैमारेन (शिव एवं पार्वती) ने सृष्टि के बाद अपने छोटे पुत्र को मणिपुर का राजा बनाया था तथा सनामही को गृहदेवता नियुक्त किया था। गुरु सिदबा व लैमारेन ने देवी-देवताओं के साथ नृत्य किया था और नृत्य भूमि को अनन्तनाग ने मणियों

के द्वारा आलोकित किया था, इसलिए इस प्रदेश का नाम मणिपुर रखा गया। मिथक और इतिहास के सम्लेषण से मणिपुर का प्राचीन इतिहास अस्पष्ट है।

पर्वतीय जन और घाटी में बसने वाले मैतै लोगो के विषय म भी मिथक और लोककथाओ के अनुसार रक्त सबध भी बताया जाता है। एक लोककथा के अनुसार मणिपुर मे बाढ आ गई और घाटी मे बसने वाले लोगो को पर्वतो में शरण लेनी पडी, जल सूखने पर उनमे से कुछ लोग लौट आए वा कुछ वही रहने लगे। दूसरी कथा के अनुसार एक पिता के तीन पुत्र थे। तीनों बड़े हो गए तो पिता को उन्हें उनकी क्षमता के अनुसार जमीन देने की बात सूझी। उसने एक खाई खोदी और तीनो बेटो से उसको कूदकर पार करने को कहा। सबसे बडा बेटा इसको पार कर गया, दूसरा खाई मे जा गिरा और तीसरा निराश होकर पीछे मुड गया, उसने प्रयास ही नहीं किया। पिता ने बडे बेटे के साहस एव क्षमता के अनुसार पर्वत पर जाकर रहने की आज्ञा दी, क्योकि वहाँ का जीवन कठोर है। दूसरे को पर्वत तल (तराई) म बसने की आज्ञा दी और तीसरे को घाटी में जाकर बसने की। नोङ्पोक निङ्थो और पाथोइबी (शिव एवं पार्वती) की कथा मे उनका पर्वतीय होने का स्पष्ट उल्लेख है किन्तु उन्हें मैतै पूजते हैं और लाइहराओबा के भाग मे रहने वालो मे जनजातीय वेशभूषा भी धारण की जाती है। इसलिए एक वर्ग है, जो पर्वतीय जनजातियो से रक्त सबध मानता है, किन्तु दूसरा नहीं।

मणिपुर के भिन्न-भिन्न नाम

बर्मी लोग मणिपुर को काथे और मोगले कहते थे। मेक्ले और कोसी नाम से भी यह प्रदेश जाना जाता था। ऐसे ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं। मैतै लैवाक स्थानीय लोकप्रिय नाम भी प्रचलित है पौराणिक ग्रन्थों म इसको मणिपुर कहा गया है। कालिकापुराण में दक्ष यज्ञ के समय यहाँ देवी का कटि भाग गिरा था। तो एक मान्यता यह भी है कि देवी के कटि प्रदेश का वस्त्र गिरा था, अत यह मेखली या मेक्ले भी कहा गया। अर्जुन जब बभ्रुवाहन के हाथों मारा गया तो उलूपी, बभ्रुवाहन की विमाता ने नागराज से सजीवनी मणि लाकर दी थी, जिससे वह जीवित हो गया था, इसलिए मणिपुर नाम पडा। अनन्त नाग द्वारा लक्ष्य पार्वती या गुरु सिदवा लेमारेन के देवताओ के साथ नृत्य करने पर रगस्थल को प्रकाशित करने के कारण इसको मणिपुर कहा गया। टी० सी० हडसन के अनुसार यह मेहेन्द्रपुर था जो बाद म मणिपुर बन गया। मणिपुरी पुराणों के अनुसार मैत्रेबाक, काङलेपुङ, मोइराङ या पोङ्थोक्लाम नामों से

है, कुछ लोगो का विश्वास है, उसी से मणिपुर नाम प्रचलित हुआ। जो भी हो 18 वी शताब्दी से तो यह नाम प्रचलित है। हाँ इसकी सीमाओ मे समय-समय में परिवर्तन हुए हैं।

प्रारंभिक इतिहास

महाभारत व पौराणिक ग्रंथो मे वर्णित घटनाएँ विवादास्पद बन गई हैं। यदि इन्हे सही माना जाए तो मणिपुर राज्य की प्राचीनता सिद्ध होती है। 'चैथारोल कुम्बाबा' नामक राजवंश के हस्तलिखित इतिहास ग्रन्थ के आधार पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रथम शताब्दी से पूर्व की वंशावली के संबंध में कोई सूचना नही है - चैथारोल कुम्बाबा म प्रथम शताब्दी से आठवीं शताब्दी तक 48 राजाओ की सूची प्रस्तुत की गई है।

वास्तव में इससे पूर्व संभवत मणिपुर विभिन्न गणो मे विभक्त था, जिनमें निंथाजो नामक वंश शक्तिशाली सिद्ध हुआ और इसी वंश के राजाओ ने इसको एक राजनीतिक इकाई का रूप दिया।

सन् 33 से 663 ई० का काल

सन् 33 ई म पाखम्बा नामक शक्तिशाली राजा हुआ जिसने मणिपुर मे सुदृढ़ शासन की स्थापना की थी और निंथाजो राजवंश का वही संस्थापक था। उसी के वंशज मणिपुर के राजसिंहासन को सुशोभित करते रहे। उसका पुत्र 267 ई० म राजा बना जिसन मणिपुर मे जल निकास प्रणाली का विकास किया। 364 ई. म खुई निङोङबा राजा बना जिसने वर्तमान गृह निर्माण पद्धति का आविष्कार किया। 558 ई म उराकोनथोबा की मृत्यु हुई और अङरोम वंश के लोगो ने आक्रमण कर दिया। उराकोनथोबा का भाई नाओ-थिमखोङ उसके पश्चात पाँच वर्ष बाद राजगद्दी पर बैठा। पोइरेतोन द्वितीय द्वारा शासन प्राप्त करने के प्रयत्न हुए परन्तु उसको आलौकिक शक्ति ने शासन प्राप्त करने से रोका। पोइरेतोन नामक कई व्यक्ति मणिपुर आए ऐसा मणिपुर के पुराणो से विदित होता है। नाओथिमखोङ के शासनकाल मे पोङ के राजा खुकाफा के भाई सामलूङ के मणिपुर में आगमन और दस वर्ष मणिपुर मे रहकर इरिल के रास्ते से अपने देश लौटने का उल्लेख है। किन्तु एक मत यह भी है कि सामलूङफा 1220 ई म आया था और उसने मणिपुर, कछार व त्रिपुरा पर विजय प्राप्त की थी।

खोमतेकचा के 763 ई मे राजा बनने का उल्लेख है जिसने चिङरेम्बी नामक राजकुमारी से विवाह किया था तथा उस राजकुमारी के साथ आने वाले लोग, जो संभवत पश्चिम से आए थे, वहीं बस गए। फयेङ ताम्रपत्र भी खोमते-

कॅथा के द्वारा जारी किए गए थे। किन्तु इन ताम्रपत्रों की प्रामाणिकता पर संदेह व्यक्त किया जाता है। खोमतेकचा के बाद लोयम्बा, कॅरेनका, यारबा, अयम्बा, इवान लानथाबा, कॅफाबा तथा इरेम्बा (984-1074) राजा हुए जिनके शासनकाल में विभिन्न वंशों के बीच कलह होते रहे। इरेम्बा के बाद लोयम्बा 1074 में राजा बना जिसने अहोम वंश को पराजित किया तथा पर्वतीय क्षेत्र को भी अपने अधिकार में किया। उसने प्रत्येक वंश के कार्य भी निश्चित किए। "लोयुम्बा सिलेल" नामक ग्रंथ में आचरण संबंधी बातें लिखी हैं, जो उसके द्वारा निर्धारित की गई थीं। उसने विधि-व्यवस्था में पर्याप्त सुधार किया। उसने राज्य को चार पाना (जिलों) में शासन की सुविधा हेतु विभाजित किया। 'लालुप' या राज्य के लिए श्रम करने की अनिवार्य व्यवस्था भी उसी ने चलाई। यह श्रम ही राज्यकर था। प्रत्येक पुरुष को इस प्रथा के अनुसार राज्य के लिए प्रत्येक 40 में से 10 दिन काम करना अनिवार्य था। "ओगरी" नामक मंत्र पाठ की विशिष्ट प्रथा भी उसी समय आरंभ हुई। 1122 ई में लोइतोम्बा राजा बना जिसने काङका "इनडोर मेम" चलाया। अतोम योरेम्बा 1150 में राजा बना जिसके छोटे भाई इवान थाबा ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया तथा मणिपुर से बाहर निकाल दिया। उसने खुमानवंश के राजा को पराजित किया।

1250 ई में जब पुरानथाबा राजा था, चीन ने मणिपुर पर आक्रमण किया, किन्तु उन्हें पराजित करके बंदी बनाकर मणिपुर में रखा गया। चीन के आक्रमण की बात सत्य मानी जाती है, किन्तु समय के विषय में विवाद है।

1263 ई में खुमोम्बा राजा बना जिसने शान वंश के काबो लोगों को पराजित किया था। मोइराम्बा 1278 में राजा बना जिसने माकि नामक जनजातीय गाँव (दीमापुर मार्ग पर) को जीत लिया। कोमयाम्बा 1324 ई में राजा बना, उसके शासनकाल में कछार व त्रिपुरा से आक्रमण हुआ, किन्तु उन्हें उसने खदेड़ दिया तथा पाँच व्यक्तियों को बंदी बनाकर रखा। 1335 से 1432 तक चार राजा और हुए। निमयोखोम्बा 1432 में राजा बना, जिसने 1443 में अक्ला नामक पर्वतीय गाँव जीता था। उसकी अनुपस्थिति में तासुल जनजाति के लोगों ने राजधानी पर आक्रमण किया किन्तु महारानी लिंथोइङाम्बी ने उन्हें पराजित किया तथा तासुल जाति को महारानी से संधि करनी पड़ी।

कयाम्बा से मुड्याम्बा (1467-1597)

1467 ई० में पामवाइ निडथौबा, कयाम्बा नाम से राजा बना। उसने कयाङ को जीता था। पोङ के राजा के साथ मिलकर उसने कयाङ जीता था। पोङ के राजा और कयाम्बा के बीच इस जीत के अवसर पर एक दूसरे को भेंट दी थी। पोङ राजा ने ही कयाम्बा को विष्णु विग्रह, स्वर्ण-पानदान, रजत दाँव, पालकी तथा माला आदि वस्तुएँ भेंट की थी। कयाम्बा के समय ब्राह्मण आव्रजन के प्रमाण भी हैं। पोङ के राजा से उसने अपनी पुत्री का विवाह भी किया। खामपाट के राजा ने राजकुमारी का पोङ के मार्ग पर अपहरण का प्रयत्न किया किन्तु पोङ व मणिपुर की सेनाओं ने उसको खामपाट के राज्य से भी खदेड़ बाहर किया। कूचबिहार के राजा से युद्ध एवं मैत्री संबंधी विरोधी मत भी प्रचलित हैं। कयाम्बा के बाद अनेक राजा हुए। चंथारोल कुम्बाबा में 1536-37 में असम के राजा से मणिपुर की राजकुमारी के विवाह का तथा नए रास्ते से वह असम जाने का उल्लेख है। मुड्याम्बा महत्वपूर्ण राजा हुआ जिसने 1563 ई० में मोयोन एवं काबो जाति को जीत लिया था। उसने शान वंश को भी पराजित किया था। शान एवं भारतीय लोगों का मैतै समाज में मिश्रण हुआ था।

खड्रेम्बा से पाइखोम्बा (1598-1698)

खड्रेम्बा 1598 से 1652 ई तक मणिपुर के शासक रहे थे। उसके सनोङ्बा नामक सौतेले भाई ने 1606 में कछार के राजा से मिलकर इन पर आक्रमण किया किन्तु खड्रेम्बा ने उसे पराजित किया तथा उसकी सेना के मुस्लिम सैनिकों, गायकों व कारीगरों को बंदी बना लिया। उन्हें मणिपुर में बसा लिया। 1630 ई. में उसके द्वारा चीनी आक्रमण को विफल किया तथा चीनी सैनिकों को बंदी बनाकर रखा था। 1633-34 में त्रिपुरा व बाद में बर्मा के क्षेत्रों को जीतने का श्रेय भी खड्रेम्बा को दिया जाता है। खड्रेम्बा ने दस बाजार बनवाए, पगड़ी बाँधने का प्रचलन किया, पालकी तथा चाँदी की टोपियाँ बनवाईं। वजन करने का तरीका, स्वर्ण बनाने की पद्धति, नदी और मंदिर बनवाना, नमक के कुँए खुदवाना, धान के पौधे रोपना, तम्बाकू पीने, पोलो खेल में सुधार करने, नौकादौड़ का आयोजन जैसे अनेक कार्य किए। मैतै लिपि का आविष्कार किया तथा चंथारोल कुम्बाबा में तिथि महीना लिखवाने की परम्परा भी उसने चलाई थी। 1631 में अपने भाई को चीन की सद्भावना यात्रा पर भेजा। इसके शासनकाल में अनेक ब्राह्मण दल मणिपुर में आए।

न्यायपालिका में भी उसने सुधार किया।

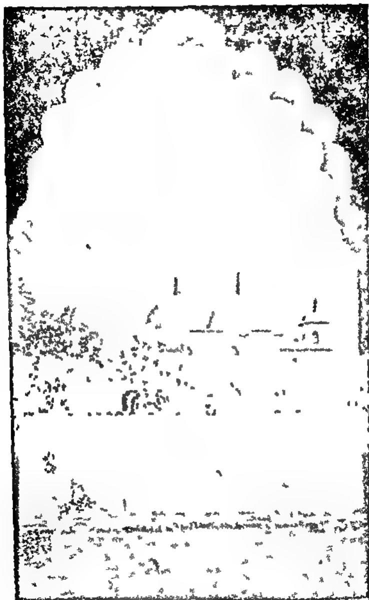
1652 में खड़ेम्बा के बाद खुनजाओबा राजा बना। खुनजाओबा ने दो बांध बनवाए, ख्वाइरमबंद बाजार को सुधारा और कम्बो घाटी तथा समजोक की तरफ अपनी राज्य सीमा का विस्तार किया।

1666 में पाइखोम्बा राजा बना जिसने बर्मी राजा को एकाधिक बार पराजित किया। संधि के पश्चात् उसने अपनी पुत्री का विवाह बर्मा के राजा के साथ कर दिया।

चराइरोङबा से कुलचन्द्र (1698-1891)

1698 ई० में चराइरोङबा राज्य सिंहासन पर बैठा। 1709 में पामहैबा उर्फ गरीबनिवाज राजा बना तथा 1748 तक शासन किया। महाराज गरीबनिवाज ने बर्मी सेना पर विजय प्राप्त की और आवा तक उन्हें खदेड़ने में सफल रहा। उसने वैष्णव धर्म को प्रश्रय दिया। न्यायपालिका एवं कार्यपालिका को उसने अलग किया। मणिपुर भाषा एवं लिपि को प्रतिबंधित किया। उसने प्राचीन मैतै भाषा के पुया(पुराण)नष्ट करवा दिये। उसने त्रिपुरा पर भी विजय प्राप्त की। गरीबनिवाज के समय मणिपुर में धर्म युद्ध हुआ था और उसके पुत्र अजित शाह ने अपने पिता की हत्या करवा दी थी। भारत शाह ने एक वर्ष राज्य किया और बाद में गौरशाह राजा बना किन्तु उसके साथ ही भाग्यचंद्र उर्फ जय सिंह भी राजा बनाया गया। गरीबनिवाज की मृत्यु के बाद बर्मी सेना ने मणिपुर पर फिर आक्रमण किए तथा आवा के राजा अलोङपाया ने मणिपुर को काफी हानि पहुँचाई तथा यहाँ से घुड़सवार सेना आदि ले गया।

1759 में गौरशाह और जयसिंह जब संयुक्त राजा हुए तो उन्होंने हरिदास गोसाईं को अंग्रेज से सहायता एवं मित्रता पूर्ण संधि के लिए भेजा 14 9-1762 को संधि हो जाने पर अंग्रेज सेना की छः कम्पनियाँ मणिपुर आ पहुँची। अक्टूबर 1763 में अंग्रेजों से दूसरी बार चिटगोंग में संधि सम्पन्न हुई। 1763 से 1793 तक भाग्यचन्द्र ने कम से कम तीन बार सिंहासन से हाथ धोए और पुनः प्राप्त भी किया। 1763 ई० में उन्हें मणिपुर छोड़कर कछार जाना पड़ा। अन्त में उन्होंने असम के राजा राजेश्वर उर्फ स्वर्गदेव से संधि की। उनके साथ अपनी पुत्री कुरंगनयनी का विवाह किया। राजेश्वर सिंह के यहाँ वे 7 वर्ष तक अतिथि बनकर रहे और अन्त में उनकी सेना की सहायता से उन्होंने मणिपुर पर अधिकार किया। वे बहुत बड़े भक्त थे। उन्होंने श्री श्रीराधा-गोविन्द के मंदिर बनवाए, गौड़ीय, वैष्णव भक्ति का मणिपुर एवं बंगाल में प्रचार किया। वीर होने



1 श्री श्री गोविन्द जी मंदिर राजनैतिक सांस्कृतिक गति विधियों का केंद्र बिंदु मन्दिर के दो गुम्बज स्थापत्य का अदभुत नमूना है।

भार अपने पुत्र लावण्यचंद्र को सौंपा और स्वयं वृंदावन चले गए। 1798 ई०

में भागवान गोला मुर्शिदाबाद जिले में भाग्यचंद्र की मृत्यु हो गई। तब उनके आठ पुत्रों में सत्ता के लिए संघर्ष आरम्भ हुआ। यह संघर्ष युद्धों और हत्याओं की कहानी है। मारजीत (चौथा पुत्र) जब दो बार सत्ता प्राप्त करने में सफल न हो सका तो 1812 ई० में उसने बर्मी राजा से संधि की और मणिपुर पर आक्रमण किया। चौरजीत व गंभीर सिंह को कछार भागना पड़ा।

सात वर्ष की विनाशलीला (1819-1826)

मारजीत ने मणिपुर का राजा बनने के बाद बर्मी राजा के आदेश मानने से इंकार कर दिया। बर्मी सेनापति महा बन्दुला ने मणिपुर पर आक्रमण किया मारजीत भी कछार भाग गया तथा अपने भाइयों से सुलह करली। 1819 से 26 तक के सात वर्ष मणिपुर के इतिहास में चही वर्ष तरेत सात कुन्ताकपा विनाश के नाम से जाने जाते हैं। बर्मी सेना ने मणिपुर जनता पर भांति-भांति के अत्याचार किए। अकाल एवं महामारी फैली। लोग मणिपुर से पड़ोसी राज्यों में भाग गए। ये सात वर्ष मणिपुर के इतिहास के विनाश के वर्ष थे। मणिपुर इन सात वर्षों में राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से बर्बाद हो गया।

गंभीर सिंह, चौरजीत व मारजीत ने इन वर्षों में कछार के राजा गोविन्द चन्द्र को पराजित करके कछार पर अधिकार कर लिया और अन्त में गंभीर सिंह ने ब्रिटिश सेना की सहायता से बर्मी सेना को मणिपुर से निकाल बाहर किया तथा काबो घाटी तक पुन अपना राज्य स्थापित कर लिया। 24 फरवरी 1826 को बर्मा के साथ यादाबो की संधि हुई, जिसमें गंभीर सिंह को ब्रिटिश एवं बर्मा मणिपुर का राजा मान लिया। 1833 ई में गंभीर सिंह व ब्रिटिश के बीच व्यापारिक संधि भी की गई। गंभीर सिंह ने मणिपुर पर [illegible] वर्ष शासन किया तथा मणिपुर में शांति एवं समृद्धि लाने का प्रयत्न किया और कोहिमा तक विजय प्राप्त की। 1834 ई गंभीर सिंह की मृत्यु हो गई और उनका पुत्र बालक चन्द्रकीर्ति सिंह सिंहासनारूढ़ हुआ। सेनापति नरसिंह के संरक्षण में बालक चन्द्रकीर्ति का शासन चलने लगा। 1835 में मणिपुर में पहला पोलिटिकल एजेंट नियुक्त किया गया।

नरसिंह सेनापति के संरक्षण में राज्य शासन चल रहा था, किन्तु चन्द्रकीर्ति महाराज की माता कुमुदिनी देवी ने नरसिंह के विरुद्ध षड्यन्त्र किया और उसमें असफल होने पर वह बालक चन्द्रकीर्ति को लेकर कछार चली गई। 1844 में नरसिंह प्रजा एवं ब्रिटिश सरकार द्वारा मणिपुर के सिंहासन पर बैठाए गए।

1850 में नरसिंह के मरने पर देवेन्द्रसिंह राजा बना। उसको पराजित करके 1851 में चन्द्रकीर्ति सिंह राजा बन गए। उन्होंने अंग्रेजों की सहायता की, जिससे उनको के सी एस आई की उपाधि प्रदान की गई। 1886 ई. में उनकी मृत्यु हो गई। सूरचन्द्र महाराजा बने। किन्तु भाइयों की आपसी कलह के कारण 1890 में उन्होंने स्वेच्छा से राज्य सत्ता कुलचन्द्र सिंह को सौंप दी और वृन्दावन यात्रा पर चल गए।

1891 ई० की क्रांति

सूरचन्द्र सिंह ने सिलचर पहुंचकर ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना की कि उन्हें पुन राज्य सत्ता सौंपी जाए तथा कुलचन्द्र को हटाया जाए तथा युवराज टिकेन्द्रजीत को बंदी बनाया जाए। असम के कमिश्नर ने मणिपुर पर 1891 में टिकेन्द्रजीत को गिरफ्तार करने के लिए आक्रमण कर दिया। स्वतंत्रता प्रेमी मणिपुर जनता व शासन अंग्रेजों के इस दखल को सहन न कर सकी। क्रांति की आग भड़क उठी। मणिपुरवासी पावना ने खोमजोम नामक स्थान पर मुट्ठी भर सैनिकों के साथ मातृभूमि की स्वतंत्रता की रक्षार्थ अंतिम क्षण तक युद्ध किया, किन्तु अंत में मणिपुर को अंग्रेजों की सेना ने तीन ओर से घेर लिया और मणिपुर की पराजय हुई। वीर टिकेन्द्रजीत सिंह व थाङाल जनरल को 13 अगस्त 1891 को फांसी दी गई व अन्यों को बंदी बनाया गया। मणिपुर के राजसिंहासन पर अवयस्क महाराजा चूराचांदसिंह को पांच वर्ष की अवस्था में बैठाया गया। 15 मई 1907 तक वास्तविक सत्ता उनके वयस्क होने तक पालिटिकल एजेंट के हाथों में रही।

महाराजा चूराचांद सिंह के शासन काल में प्रथम विश्वयुद्ध के लिए जब कुकी जनजाति के लोगों को जबरदस्ती लेबर कोर में भरती करना आरंभ किया तो उन्होंने विद्रोह किया। जिसको 1919 ई में कुचल दिया गया। इसके तुरन्त बाद कबुई विद्रोह हुआ। 1927 में कबुई और कच्चा नागा लोगों ने जदोनाङ के नेतृत्व में कबुई राज्य की स्थापना का स्वप्न देखा तथा नागालैंड व तमिङलांग के कबुई व कच्चा नागाओं ने उसका समर्थन किया। 1931 में जदोनाङ को फांसी दी गई। उसके बाद इस विद्रोह ने क्रांति का रूप धारण किया और रानी गाइडिलू ने नेतृत्व संभाला। वास्तव में यह क्रांति धार्मिक एवं सैनिक क्रांति थी। अंग्रेजों ने कबुई जाति और कच्चा नागा जाति के लोगों पर कई अत्याचार किए। अंत में रानी बंदी बना ली गई। उसको आजन्म कारावास की सजा दी गई। 1933 से 46 तक वह जेल में रही बाद में उसको रिहा

किया गया। उसको राजनीतिक नेता एव उसके आन्दोलन को राष्ट्रीय आदोलन के अग के रूप मे स्वीकार कर लिया गया। रानी 1960 ई में ईसाई धर्म विरोधी होने के कारण फिजोदल के भूमिगत नागाओं के लिए आँख की किरकिरी बन गई, अत उन्होने रानी को समाप्त करना चाहा। विवश होकर वे 1960 मे भूमिगत हो गई और 1966 तक जलियाङराङ दल बनाकर फिजो दल से लडती रही। अत म 1966 मे वे अपने दल के साथ कोहिमा मे आकर रहने लगी है।

महाराज चूराचाँद के राज्य काल में अखिल मणिपुरी महासभा का 1931 ई हुआ मे अधिवेशन एक प्रमुख घटना है जिसमें वर्मा-मलाया और भारत के अन्य भागो से मैतै लोगो ने भाग लिया था। उन्होने शिक्षा, सस्कृति और मणिपुरी भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध मे उन्होंने अग्रेजो की सहायता की। सितम्बर 1941 में वे अपना राज्य भार बडे पुत्र बोध चन्द्र सिंह को सौंपकर नव द्वीप चले गए। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान प्रथम "नूपीलान" (महिला युद्ध), जिसका अन्यत्र उल्लेख है भी उनके शासन काल की एक महत्वपूर्ण घटना है।

10 मई 1942 में जापानी बम वर्षकों ने इम्फाल पर बम गिराए। पुलिस ने अपना काम बद कर दिया। पूरी घाटी में कानून और व्यवस्था भग हो गई और लोग इम्फाल छोडकर पडोसी गाँवो में आकर रहने लगे। बर्मा से आजाद हिन्द फौज ने जापानी सेना के साथ भारत में 8 मार्च 1944 को मणिपुर पर आक्रमण किया। 14 अप्रैल 1944 को वे मोइराङ कस्बे पर अपना अधिकार कर सके। मोइराङ के डाक बगले में आजाद हिन्द फौज के मुख्यालय की स्थापना की गई और तिरगा झडा लहराने लगा। लगभग 1500 वर्ग मील क्षेत्र जून तक आजाद हिन्द फौज के नियत्रण में रहा। मानसून के सक्रिय होने से तथा ब्रिटिश विजय के कारण स्वतत्रता सग्राम का एक अध्याय यहाँ समाप्त हुआ।

महाराजा बोधचन्द्र के समय ही विश्वयुद्ध के पूर्व ही मणिपुर में स्वतत्रता आदोलन की लहर पहुँची थी। राजनैतिक दलों ने स्वायत शासन की माँग की। 15 अक्टूबर 1949 को महाराजा बोधचन्द्र ने मणिपुर का भारत में विलय स्वीकार किया और शिलाँग में विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। इस प्रकार मणिपुर भारत गणराज्य का एक अग बन गया।

राज्य प्रशासन

सन् 1891 ई से पूर्व मणिपुर राज्य में एकतंत्र था। राजा सर्वोच्च सत्ताधारी था। राजा की सहायता के लिए एक दरबार होता था, जो कार्यों में सहयोग देता था। ब्रह्म सभा धार्मिक कार्यों के लिए सर्वोच्च संस्था थी। धर्म के अतिरिक्त नृत्य गान, साहित्य-कला के लिए भिन्न-भिन्न संस्थाएँ थी, जिनका निर्णय अपने-अपने क्षेत्र में अंतिम होता था। महाराजा भाग्यचंद्र के शासनकाल (1759-98) से मणिपुर की सार्वभौम सत्ता श्री गोविन्द जी को समर्पित कर दी गई और राजा उनका प्रतिनिधि मात्र माना जाने लगा।

परम्परा के अनुसार राजा का छोटा भाई युवराज और उससे छोटा सेनापति होता था। ये तीन पद सर्वोच्च थे। इनके अतिरिक्त राज परिवार से ही पुलिस का सर्वोच्च अधिकारी कोतवाल, मंत्री, सगोल हजाबा (घोड़ो का अधिकारी), साकू हजाबा (हाथियो का अधिकारी) नियुक्त किए जाते थे। अबा पीरेल (विदेश मंत्री) का पद महाराजा चन्द्रकीर्ति (1855-86) के समय बनाया गया था।

1891 ई. से 1907 ई तक राज्य शासन की बागडोर ब्रिटिश प्रशासक के हाथ में रही, क्योंकि उस समय महाराजा चूराचांद सिंह वयस्क नही थे। जब वे वयस्क हुए तो वे 6 स्थानीय दरबार के सदस्यो और एक आई सी एस ऑफिसर की सहायता से प्रशासन चलाते थे। 1947 तक महाराजा ही प्रशासन के लिए उत्तरदायी थे, किन्तु पर्वतीय क्षेत्र का प्रशासन दरबार के अध्यक्ष एवं एक आई सी. एस. अधिकारी के जिम्मे था। राज्य दरबार ही दीवानी एवं फौजदारी के मुकदमो के संबंध मे अंतिम निर्णय देता था। राज्य का बजट प्रतिवर्ष असम के गवर्नर द्वारा स्वीकृत किया जाता था। किन्तु 1947 में महाराजा को जनता की मांग के कारण एक विधान सभा का निर्माण करना पड़ा जिसने राज्य का संविधान बनाया और महाराज कुमार प्रियव्रत सिंह के मुख्यमंत्रित्व में जनता की प्रतिनिधि सरकार का गठन किया गया। मणिपुर स्टेट कोर्ट एक्ट, 1947 तथा मणिपुर स्टेट हिल्स प्युपल रेगुलेशन, 1947 भी उसी समय पारित किए गए।

15 अक्टूबर 1949 को मणिपुर राज्य का भारत गणतंत्र में विलय हुआ। 26 जनवरी 1950 में जब भारत का संविधान लागू हुआ तो मणिपुर को सी स्टेट सूची मे रखा गया तथा इसका प्रशासन राष्ट्रपति के अधीन रखा गया। एक चीफ कमिश्नर को राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में मणिपुर में नियुक्ति

की गई। सलाहकार समिति की नियुक्ति का प्रावधान किया गया। दो संसद सदस्य (एक घाटी से व एक पहाड़ों से) चुने गए। त्रिपुरा और मणिपुर से एक राज्य सभा का सदस्य भी चुना गया। जनवरी 1952 में प्रथम चुनाव सम्पन्न हुआ, 30 सदस्यों की इलेक्टरोल कॉलेज का चुनाव किया गया, जिसने (चीफ कमिश्नर के लिए) पाँच सदस्यों की सलाहकार समिति का निर्वाचन किया। 1965 में संविधान में 7 वें संशोधन के द्वारा मणिपुर को यूनियन टेरेटरी का दर्जा दिया गया जिसका प्रशासन राष्ट्रपति के द्वारा मनोनीत प्रशासक को सौंपा गया। 30 सदस्यों की टेरिटोरियल कौंसिल बनाई गई जिसके अध्यक्ष को कार्यपालिका के अधिकार दिए गए। इसका प्रथम चुनाव 1957 में हुआ। 1962 में तृतीय आम चुनाव सम्पन्न हुए। इस बीच मणिपुर की प्रजा लगातार प्रतिनिधि सरकार की माँग कर रही थी। 1963 में संविधान में 14 वाँ संशोधन करके 30 निर्वाचित सदस्यों की विधान सभा के तथा तीन मंत्रियों के मंत्रिमंडल के निर्माण का निर्णय लिया गया। मुख्यमंत्री बनाने का प्रावधान भी रखा गया। 1967 ई के चुनाव के बाद पूर्ण राज्य की माँग तेज हो गई। अंतिम टेरिटोरियल विधान सभा अक्टूबर 1969 में भंग की गई। सभी राजनैतिक दलों ने एक संयुक्त मोर्चा बनाया जिसका नाम था स्टेटहुड डिमांड कमेटी। 1969 से 1971 के बीच हड़तालें, जलूस, असहयोग आंदोलन आदि के कारण मणिपुर अशांत रहा। अन्त में 21 जनवरी 1971 को मणिपुर को पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हो गया और राज्य विधान सभा की सदस्य संख्या 60 कर दी गई। संसद के लिए दो और राज्य सभा के लिए एक सदस्य चुने जाने की संवैधानिक व्यवस्था है। न्याय पालिका में मणिपुर के लिए पृथक उच्च न्यायालय नहीं है, गुवाहाटी हाईकोर्ट की ही एक बेंच यहाँ है, तथा सुप्रीम-कोर्ट अपील का क्षेत्र है।

प्रशासनिक ईकाइयाँ

मणिपुर को जिलों और उपखंडों में बाँटा गया है। जिले में डिप्टी कमिश्नर तथा उपखंड खंड में सब डिविजनल ऑफिसर प्रशासक होते हैं। अभी मणिपुर में आठ जिले हैं जिनके नाम उनके मुख्यालयों के नाम पर रखे गए हैं—इम्फाल, थौबाल, विष्णुपुर नामक तीन जिलों में घाटी को विभक्त किया गया है जबकि सेनापति तमिंगलांग चूराचांदपुर, चन्देल और उखरूल पर्वतीय जिले हैं। इन जिलों में हिल डिस्ट्रिक्ट कौंसिल के निर्वाचित प्रतिनिधि हैं, जो इनका प्रशासन चलाते हैं। इस व्यवस्था से प्रशासन जन सुलभ बनाया गया है।

वन-सम्पदा

मणिपुर के पर्वतीय क्षेत्र वनों से ढके हैं। 15,154 वर्ग किलोमीटर में वन फले हैं। कृषि के तरीके 'झूम' के कारण मणिपुर की वन सम्पदा को बहुत बड़ी हानि पहुँची है। इन जगलो में टीक और टीक से मिलती-जुलती लकडी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती है। बडे लम्बे-लम्बे पेड इन वनो में पाए जाते हैं। इन पेडो पर लताएँ बेलें भी छाई रहती हैं और इनके नीचे घनी घास और झाडियाँ भी हैं। बास के भी घने जगल है। 'बेंत' भी पाई जाती है। लोक-ताक झील के द्वीपो पर सरकडे के वन भी विशेष उल्लेखनीय हैं। सरकडो का यह वन बहुत ही घना है। आम के पेड भी बहुत बडे-बडे हैं किन्तु इन पर लगने वाले फलो में पकने से पूर्व ही कीडे लग जाते हैं और खाए नहीं जा सकते हैं।

मणिपुर में पाए जाने वाले पेड-पौधों पर रग-बिरगे फूल खिलते हैं। उख-रूल के पास सिरोही पर्वत पर 'सिरोलीली' नामक लीली पुष्प के पौधे हैं। यह लीली ससार में अन्यत्र कही नही पाया जाता है। प्रकृति की मणिपुर को यह अनुपम भेट है। सिरोही पर्वत की ऊँचाई 2,568 है। इसके अतिरिक्त भी मणिपुर के जगलों में विभिन्न प्रकार के रग-बिरगे फूल खिलते हैं।

मणिपुर के कुल भू-भाग के 67 78 प्रतिशत भाग मे वन फैले हैं जो भारत के अन्य भागों में औसत वनों की तुलना में बहुत अधिक है। मणिपुर की वन सम्पदा की क्षेत्रीय पर्यावरण एव आर्थिक दशा मे महत्वपूर्ण भूमिका होते हुए भी इनका उत्पादन देश की वन उत्पादन की औसत मात्रा से बहुत कम है। इन वनो से इमारती लकडी व जलाने की लकडी प्राप्त होती है। सुगंधित पदार्थ, रेशो, शहद, मोम, टरपाइन तेल तथा औषधियाँ, इन वनो से प्राप्त की जा सकती हैं, किन्तु अभी तक इस ओर विशेष ध्यान नही दिया गया है। जलाने की लकडी जो मणिपुर में खाना पकाने का एकमात्र साधन है, इन वनो की मुख्य

उपलब्धि है । 1980 में 2,337 व्यक्तियों को इन वनों से रोजगार प्राप्त हुआ। वन उत्पादन क्षमता का यातायात के साधनों के अभाव में पूर्ण उपयोग सम्भव नहीं हो सका है। मणिपुर के वन उत्पादन के सुधार के लिए ने निम्न सुझाव दिए गए हैं —

1 मणिपुर के वनों का सर्वेक्षण किया जाए तथा उनकी सीमा निर्धारित की जाए।

2 चरागाह क्षेत्र को निर्धारित अवधि के बाद बद कर दिया जाए और नया चरागाह क्षेत्र निश्चित अवधि के लिए खोला जाए।

3 सरक्षित वन क्षेत्र का विस्तार किया जाए।

4 अवाछनीय अधिकार तथा सुविधाओं को नियन्त्रित किया जाए।

5 झूमिंग कृषि प्रणाली को कम किया जाए।

वन्य-जीव-जन्तु

मणिपुर के घने वनों म विभिन्न प्रकार के जीव जन्तु पाए जाते हैं। कभी इन जगलों मे हाथी शेर, बाघ आदि जानवर भी पाए जाते थे किन्तु अब हाथी बिल्कुल नही पाए जाते हैं। अजगर भी कुछ वर्षों पूर्व तक देखे जाते थे। बन्दर भी कभी इस प्रदेश में रह होंगे, किन्तु लगता है कि यहाँ के पर्वतीय जन ने इनको खा डाला और इनका नामनिशान ही मिटा दिया है। अब मणिपुर में मात्र इम्फाल में महाबली ठाकुर (हनुमानजी) के मंदिर के अतिरिक्त कही भी बन्दर नही देखे जा सकते। लगूर भी रहे होंगे क्योंकि यहाँ की लोककथाओं में उनका उल्लेख मिलता है। खरगोश बनैले, सूअर, हरिन, आदि जन्तु भी पाए जाते हैं।

वन्यजीवों म विशेष उल्लेखनीय जन्तु मणिपुर का 'शडाई' हरिन है, जिसके सीग बारहसीगे के सीगों जैसे हैं। शडाई लोकताक के द्वीपों के सर-कडे के वनों में पाया जाता है किन्तु अब इसकी सख्या भी बहुत ही कम हो गई है। यह ससार का दुर्लभ प्राणी है, जो मणिपुर तथा बर्मा के अतिरिक्त ससार में और कहीं नही पाया जाता है। प्रकृति की यह अद्भुत कृति मणिपुर में सुरक्षित है।

मणिपुर मे क्वाक् तानबा या क्वाक यात्रा (कौए भगाना) एक त्योहार मनाया जाता है, जिससे पता चलता है कि कभी मणिपुर में कौए थे किन्तु आज

एक भी कौआ दिखाई नही देता है। अन्य पक्षियो के समान ही सभवत कौओ को भी पर्वतीय जन उदरस्थ कर चुके हैं। पक्षियो की चहचहाट मणिपुर में नही सुनी जा सकती है, क्योंकि उन्हें मानव ने अपने भोजन के रूप म प्रयोग करके लगभग समाप्त कर दिया है। कोयल या पपीहे की ध्वनि बसवारी या अमराइयो से सुनाई दे जाती है।



संगाई शावक

हिमालय का काला भालू तथा भारतीय भालू उत्तरी पर्वतो में पाया जाता है जंगली सूअर मणिपुर में सभी स्थानो पर पाया जाता है। मणिपुर पश्चिमी पर्वतो मे साही छछूदर और चूहे बहुत होते हैं।

पक्षिया म तीतर चकोर बटेर, जगली मुर्गे कबूतर तथा चाहा, बतखें आदि जीव पाए जाते हैं। 1954 ई० में केबुल लमजाओ नामक द्वीप को अरण्य बनाकर 52 कि० मी० क्षेत्र में पाए जाने वाले पशु पक्षियों की सुरक्षा की ओर ध्यान दिया गया। इस अरण्यक (अभय स्थल) के भाग तैरते हुए द्वीप हैं जिन पर गाँव भी बसे हैं तथा वहाँ नाव द्वारा ही पहुँच सकते हैं। इम्फाल में जुओलोजिकल गार्डन भी बनाया गया हैं जिसमें मणिपुर के वन्य पशुओ के साथ

ही विश्व के अन्य पशु भी रखे गए हैं। मणिपुर के वन्य पशु-पक्षी तेजी से नष्ट होते जा रहे हैं। 'मिथुन' नामक नीलगाय जैसा एक पशु अब दिखाई नहीं देता जबकि पहले मणिपुर में बहुतायत मे उपलब्ध था। आज भी कानून बनाने के बाद भी शिकार करना व पशु-पक्षियो को मारना बन्द नही हो सका है। इसका प्रमुख कारण यह है कि पर्वतीयजन मासाहारी हैं और कुत्ते, बिल्ली, साप तक खा जाते हैं। इसलिए मणिपुर की वन्य पशु सम्पदा का तेजी से क्षय हो रहा है। घाटी मे बसने वाले मैते मछली को छोडकर अन्य किसी प्राणी को अभक्ष्य मानते हैं।

गाय-भैंस, भेड-बकरी, सूअर, मिथुन, मुर्गे, बतख आदि पशु पक्षियो के घरेलू व्यवसाय के रूप में पाला जाता है।

कृषि तथा सिंचाई

कभी मणिपुर की भूमि समुद्र तल में छिपी हुई थी अत यह धरती बहुत ही उर्वर है। बिना खाद दिए ही यहाँ की दोमट मिट्टी म प्रति एकड उपज भारत के अन्य भागों से बहुत ही अधिक है। यहाँ आज भी उर्वरकों का बहुत ही कम प्रयोग किया जाता है। गोबर का खाद के रूप मे उपयोग भी बहुत ही कम किया जाता है। सरकारी प्रयत्नों के कारण इधर कुछ रासायनिक खाद का प्रयोग किया जाने लगा है।

धरती की ऊपरी परत मिट्टी की बनी होती है जो पौधों को बढ़न के लिए आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करती है। पौधे बदले मनुष्य व पशुओं को भोजन प्रदान करते हैं और मनुष्य को विभिन्न प्रकार के रेशे भी देते हैं जिससे कपड़े बनाए जाते हैं। इस प्रकार कृषि और मानव का जीवन स्तर मिट्टी की उर्वरता पर निर्भर रहता है। मणिपुर म लाल मिट्टी और दोमट मिट्टी अधिक है। ये दोनों ही मिट्टियाँ बहुत उर्वर होती हैं। अत यहाँ बिना उर्वरकों के प्रयोग के ही औसत कृषि उपज उन्नत है। भूमि कटाव मणिपुर की बहुत बड़ी समस्या है जिसको रोकने के लिए विविध उपाय आवश्यक हैं। भूमि कटाव को रोकने के लिए बांध बनाना और भूमि रक्षक वन लगाना आवश्यक है। इधर सरकार इस ओर ध्यान दे रही है।

पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि

पर्वतों मे रहने वाले लोगों का भी प्रमुख व्यवसाय कृषि है किन्तु कृषि करने का ढंग आज भी परम्परागत है। कृषि का तरीका झूम' है। जिसका अर्थ है—जगल को जलाकर नई कृषि योग्य भूमि बनाना और उस पर कृषि करना। एक या दो वर्ष उस भूमि पर खेती करने के पश्चात उस खेत को छोड़कर दूसरा खेत बना लिया जाता है। इस तरीके को झूम' कहते हैं। पर्वतों

में खेत सीढ़ीनुमा होते हैं तथा पहाड़ों के ढाल पर बनाए जाते हैं। चावल, दालें तथा सब्जियां मुख्य रूप से उगाई जाती हैं। झूम कृषि बहुत हानिकारक है। इससे वन नष्ट हो रहे हैं, भूमि का कटाव होता है। उर्वरा शक्ति समाप्त होती है और उत्पादन भी कम होता है। किन्तु फिर भी झूम कृषि ही यहाँ प्रचलित है। रात्रि के समय पर्वतों के ढालों पर जलती हुई आग आज भी दिखाई देती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि मणिपुर में विशेष कानून के अनुसार वन गांव की सार्वजनिक सम्पत्ति होते हैं। कृषि योग्य भूमि पर इसीलिए व्यक्तिगत स्वामित्व का प्रश्न नहीं उठता है और कृषि सामूहिक रूप से की जाती है।

ताखुल तथा माओ जनजाति के लोग सीढ़ीनुमा खेत बनाकर कृषि करते हैं। इन खेतों पर आंशिक व्यक्तिगत स्वामित्व होता है। पर्वतीय भाग में कृषि का यह तरीका भी अब लोकप्रिय हो रहा है। कृषि मुख्य व्यवसाय होने के कारण पर्वतीय जन-जीवन कृषि संचालित है। समस्त सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों का केन्द्र कृषि ही है। प्रत्येक कृषि कार्य चाहे वह जोतना हो, बोना हो या फसल काटना, त्यौहारों तथा नाच गाने से जुड़े हैं। गाँव का राजा प्रत्येक व्यक्ति को कृषि के लिए भूमि देता है। सभी गाँव के लोग मिलकर खेतों में जोतने-बोने से लेकर फसल काटने तक का कार्य राजा की आज्ञा से करते हैं। खेत में उत्पन्न चावल का बंटवारा भी राजा की आज्ञा से होता है और उपज का एक निश्चित भाग गाँव के अन्न भंडार में प्रत्येक किसान को देना होता है। धान का नाप पर्वतीय जन बांस की बनी टोकरी से करते हैं। चावल के अतिरिक्त आलू, सब्जियाँ, अदरक, दालें आदि भी उत्पन्न की जाती हैं। व्यक्तिगत स्वामित्व न होने पर भी प्रत्येक व्यक्ति को कृषि के लिए भूमि अवश्य ही दी जाती है।

खेतों को जोतते या काटते समय स्त्री-पुरुष सामूहिक रूप से कार्य करते हैं और लोकगीत भी गाते हैं। फसल काटकर जब घर ले जाते हैं तो सामूहिक भोज किया जाता है। चावल के लिए अलग खलिहान नहीं होता। खेत में ही धान निकाल कर ले जाते हैं और गाँव के बाहर ही चावल के डंठलों से भंडार घर बनाकर उनमें धान भर दिया जाता है, जहाँ से प्रतिदिन आवश्यकतानुसार धान निकालकर स्त्रियां घर ले जाकर लकड़ी की बनी ओखली में कूटकर चावल निकालती हैं।

मणिपुर की घाटी में बसने वाले मैते लोगों का कृषि योग्य भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व होता है। भूमि का नाप 'परी' कहलाता है। जो लगभग

तीन एकड के बराबर होता है। घाटी के लोगो का भी प्रमुख व्यवसाय कृषि है। यहाँ पर भूमि बँटाई पर दी जाती है। खेती करनेवाला व्यक्ति खेत के मालिक को 1/4 भाग देता है, जबकि 3/4 भाग वह स्वयं रख लेता है।

कृषि अर्थ व्यवस्था

मणिपुर की सपूर्ण अर्थ व्यवस्था कृषि पर ही निर्भर करती है। 70 प्रतिशत जनसख्या सीधे कृषि पर निर्भर करती है। खाद्यानो की सपूर्ण आवश्यकता कृषि के द्वारा ही पूरी की जाती है। औद्योगिक क्षेत्र एव आर्थिक दृष्टि से इस पिछडे राज्य में कृषि ही आय का प्रमुख स्रोत है तथा राज्य की आय का 50 प्रतिशत भाग कृषि से ही प्राप्त होता है।

मणिपुर के कुल क्षेत्रफल के लगभग 8 प्रतिशत भाग मे ही कृषि की जाती है। इसमे से 4 प्रतिशत भूमि ऐसी है जिसमे दूसरी बार खेती की जाती है। पर्वतीय ढालो को कृषि योग्य बनाने के प्रयत्न किए जा रहे हैं जिससे कृषि योग्य भूमि के क्षेत्र मे विस्तार की सभावना है। मणिपुर घाटी एव बराक नदी बेसिन की 80% भूमि में कृषि की जाती है, किन्तु पर्वतीय क्षेत्र जगलो से ढके होने के कारण वहा कृषि योग्य भूमि बहुत ही कम है।

फसलें

मणिपुर में 98-17% कृषि भूमि पर चावल की फसल पैदा की जाती है। चावल के बाद मक्का मणिपुर की प्रमुख फसल है, जिसका उत्पादन मुख्य रूप से पर्वतीय प्रदेश में होता है। अन्य प्रमुख फसलें हैं—आलू, मिर्च, खरीफ व रबी की दालें, सरसो, गन्ना, फल आदि। 1975-76 से राज्य में खाद्यान उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई जिससे खाद्यानो की दृष्टि से मणिपुर आत्मनिर्भर हो गया है परन्तु कभी-कभी बाढ या सूखे की स्थिति के कारण चावल का आयात करना पडता है।

मुख्य चावल की फसल मई-जून में बोई जाती है तथा अक्टूबर से दिसम्बर के बीच काटी जाती है। चावल की बुवाई सीधी होती है और पौधे भी लगाए जाते हैं। मक्का की फसल केवल बेचने के लिए लगाई जाती है किन्तु पर्वतीय भागो में कही-कही खाते भी हैं। गन्ने की फसल गुड बनाने व खाडसारी के लिए लगाई जाती है। पर्वतीय भागो में आदि काल से कपास भी बोई जाती है, जिससे धागा बनाया जाता है। गेहूँ की फसल इधर कुछ ही वर्षों से लगाई जाने लगी

है। यदि सिंचाई साधनों का समुचित विकास हो जाए तो गेहूँ की फसल किसानों के लिए धनार्जन हेतु प्रमुख फसल बन सकती है। चाय, जूट व काफी उत्पादन भी संभव है, किन्तु इस ओर ध्यान नहीं दिया गया है। पपीता, केला, सतरा अनानास नींबू तथा मटर आदि का उत्पादन भी होता है और भविष्य में इनके उत्पादन में वृद्धि की संभावनाएँ हैं। फलों के उत्पादन में वृद्धि हुई है। 1983-84 से मणिपुर से अनानास का रूस व यूरोप के देशों को निर्यात भी आरम्भ किया गया है।

सिंचाई

मणिपुर में सिंचाई सुविधाओं का अभाव रहा है तथा खाद्यानों की आत्म निर्भरता तथा एक ही फसल पैदा करने से सिंचाई की आवश्यकता महसूस नहीं की गई किन्तु लोकत्ताक लिफ्ट सिंचाई योजना के आरम्भ के साथ मणिपुर में सिंचाई की शुरूआत हुई है। इससे 40,000 हैक्टर भूमि की सिंचाई संभव है। इसके अतिरिक्त अन्य छः सिंचाई परियोजना हैं, जिनके पूरा होने पर 108000 हैक्टर भूमि की सिंचाई संभव हो सकेगी। सेकमई बैराज से 2000 हैक्टर भूमि की सिंचाई हो रही है। जब यह बैराज बनकर तैयार हो जाएगा तो इससे 8500 हैक्टर भूमि की सिंचाई संभव होगी। खोपम बांध के द्वारा तमिंगलौंग जिले में 1000 हैक्टर भूमि की सिंचाई हो रही है। थोबाल बहुमुखी परियोजना 1980 में आरम्भ की गई है, यह उत्तर पूर्वी-क्षेत्र की सबसे बड़ी बहुमुखी योजना है। इसके चार भाग हैं—बांध बैराज, नहरें तथा विद्युत उत्पादन। इसके पूरे होने पर 34,000 हैक्टर भूमि की सिंचाई की जा सकेगी। सिंगदा बहुमुखी परियोजना से 4000 हैक्टर भूमि की सिंचाई संभव हो सकेगी। खुंगा परियोजना से 15,000 हैक्टर भूमि की सिंचाई संभव होगी। इस परियोजना का काम 1984 में आरम्भ कर दिया गया है। इनके अतिरिक्त छोटी सिंचाई योजनाओं से भी 4-5 लाख हैक्टर भूमि की सिंचाई संभव हो सकी है। सिंचाई योजनाओं के द्वारा कृषि उत्पादनों में वृद्धि संभव हुई है और अब मणिपुर का किसान केवल मानसून पर निर्भर नहीं रह गया है। मणिपुर की जल क्षमता का पूरा उपयोग किए जाने पर मणिपुर की आर्थिक प्रगति सुनिश्चित है।

जल वितरण

स्वस्थ जीवन के लिए स्वच्छ पीने का पानी आवश्यक है। मणिपुर में पानी

की कोई कमी नहीं है किन्तु खेद का विषय है कि मणिपुर में पीने के पानी की सुविधा नहीं है। पर्वतीय गावों में तो एक-दो कि० मी० की दूरी से स्त्रियों को पीठ पर टोकरी में बांस की नलियों में पानी भरकर लाना पड़ता है। सरकारी प्रयत्नों से 1280 जल समस्या ग्रस्त गाँवों में से लगभग 800 गाँवों में जल वितरण की सुविधा प्रदान की गई है। उखरूल जल वितरण योजना से वहाँ रहने वाले 6000 लोगों को पानी मिल रहा है। किन्तु घाटी के गावों में अभी जल वितरण व्यवस्था की दिशा में बहुत कुछ करना बाकी है।

इम्फाल शहर मणिपुर की राजधानी है, किन्तु यहाँ आज भी पानी ट्रकों द्वारा वितरित किया जाता है तथा यहाँ रहने वाले लोगों को पानी की गभीर समस्या का सामना करना पड़ता है। पोखरी का गदा पानी नहाने-धोने के काम आता है। शहर में अनेक हाथ से खींची जाने वाली गाड़ियाँ (ठेले) हैं जिन पर पानी के ड्रम भरकर मजदूर घरों में पानी पहुँचाते हैं और यह पानी पोखरियों से और काङला परिखा से लाया जाता है जो गँदला होता है। राज्यपाल भवन से मंत्रियों के भवनों तक ट्रकों से पानी दिया जाता है। शहर के कई भागों में जल वितरण के लिए न नल और न ही टैंकरों द्वारा जल वितरण की व्यवस्था है। सिगदा नामक परियोजना के पूरी होने पर इम्फाल का जल सकट हल हो सकेगा किन्तु यह परियोजना पूरी होने तक सरकार को राजधानी में जल वितरण का विकल्प ढूंढना चाहिए, जिससे लोगों को जल सुविधा प्राप्त हो सके।

खनिज सम्पदा

मणिपुर की खनिज सम्पदा का अभी तक सही अनुमान नहीं लगाया गया है। यद्यपि चूने के पत्थर, लिगनाईट, क्रोमाइट, निकिल, तांबा, एसबेसटोस तथा नमक के भडार की सभावना है, तथापि इनका अभी व्यवसायिक स्तर पर उपयोग नहीं हुआ है। मणिपुर की खनिज सम्पदा का सर्वेक्षण तथा उसकी सभावनाओं का पता लगाना आज भी बाकी है। पेट्रोलियम व प्राकृतिक गैस मिलने की सभावना है। अभी इस दिशा में खोज करनी होगी।

शक्ति के स्रोत

पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस के सबध में अभी खोज करनी होगी किन्तु मणिपुर की घाटी तथा बराक नदी के बेसिन में इनके भण्डार की सभावनाएं

है। जलविद्युत उत्पादन की मणिपुर में अपरिमित क्षमता है। एक अध्ययन के द्वारा 706 मेगावाट जल विद्युत उत्पादन की क्षमता बताई गई है। 1930ई० में लैमाखाङ मे 156 मेगावट जल विद्युत उत्पादन का केन्द्र स्थापित किया गया था। इसका उद्देश्य राजमहल व इम्फाल बजार में विद्युत वितरण था। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान सेना ने डीजल से विद्युत बनाने का एक पावर हाउस बनाया था जिसकी 108 किलोवाट विद्युत उत्पादन की क्षमता थी। मणिपुर में कई डीजल पावर हाउस बनाए गए, जिससे राज्य की बिजली की मांग पूरी की जा सके। गांवो में भी बिजली पहुँचाई गई है किन्तु अभी भी कई स्थान ऐसे है जहाँ बिजली नही पहुँचाई जा सकी है।

लोकत्ताक जल परियजना

लोकत्ताक बहुमुखी परियोजना सपूर्ण उत्तरी पूर्वी भारत के लिए आशापूर्ण योजना है। जलविद्युत उत्पादन के अतिरिक्त इस योजना के द्वारा सिंचाई सुविधाएँ प्राप्त होगी और मणिपुर के दक्षिणी भाग मे बाढ पर नियत्रण सभव हो सकेगा। केन्द्रीय सरकार के जल एव शक्ति सगठन द्वारा यह परियोजना आरम्भ की गई और पूरी की गई है। आशातीत विलम्ब के बाद 1985 मे इस योजना से विद्युत उत्पादन आरम्भ हो गया। प्रारभ मे इस पर 80 6 करोड रुपए खर्च होने का अनुमान था किन्तु योजना के पूरे होने पर यह राशि दुगुनी हो गई है।

लोकत्ताक झील का 39 655 हैक्टर मीटर पानी का भण्डार विद्युत उत्पादन एव सिंचाई हेतु काम में लिया जा रहा है। 10 7 मीटर ऊँची तथा 68 6 मीटर लम्बी इथाई नामक 'बैराज' इम्फाल नदी पर बनकर तैयार हो गया है, जो वर्षा ऋतु के बाद भी लोकत्ताकझील के स्तर को बनाए रखेगा। 3,620 मी. लम्बा पावर चैनल जल विद्युत योजना की सचालन प्रणाली के लिए लगाया गया है। 6,350 मीटर लम्बी प्रेशर टनल बनाई गई है जो सर्ज शाफ्ट तक जाती है। सर्ज शाफ्ट से 272 मीटर लम्बी टनल बनाई गई है जिस से लेमात्ताक नदी के किनारे बने तीन पावर स्टेशनो को बिजली पहुँचाई जाती है। प्रत्येक स्टेशन से 35 मेगावट बिजली का उत्पादन हो रहा है। हाई टेंशन के 132 केवी वाले बिजली के तारो की लाइन से लोकत्ताक पावर हाउस को मणिपुर नागालैण्ड, असम तथा मेघालय से जोडा गया है। लोकत्ताक से विद्युत उत्पादन होने से पहले मणिपुर असम से बिजली लेता था किन्तु अब देता है। इस समय

मणिपुर में हाई/लो टेंशन लाइन 2000 कि० मी० से भी अधिक है। लोकताक लिफ्ट सिचाई के लिए पम्प उत्साह भी बन गया है जिससे सिचाई सुविधा प्राप्त हो गई है। 1979 में लिफ्ट सिचाई के इस पम्प हाउस से 2000 हैक्टर भूमि की सिचाई होती थी, जबकि अब 40 000 हैक्टर भूमि की सिचाई संभव है। इम्फाल नदी पर बने बैराज से 1600 हैक्टर भूमि की सिचाई हो रही है।

अन्य जल विद्युत योजनाओ से भी विद्युत उत्पादन आरम्भ हुआ है लुडमाइ खोङ लोकताओ माइको हाईडल प्रोजेक्ट कुनिङ जलनेल तथा संमालोङ आदि योजनाएँ प्रमुख हैं। आज मणिपुर मे जल विद्युत का उत्पादन अपनी आवश्यकता से कई गुना अधिक किया जा रहा है। विद्युत उत्पादन के बावजूद विद्युत वितरण प्रणाली मे अभी कमी है। घरो मे अक्सर बिजली नही आती है। कई दिनों तक विद्युत वितरण नहीं होता है जिससे अन्य असुविधाओं के साथघरो मे कई दिनो तक पानी नही पहुँच पाता है। यद्यपि इधर कुछ दिनो से स्थिति में सुधार हुआ है किन्तु इस दिशा मे सुधार की काफी गुंजाइश है।

जल विद्युत उत्पादन के साथ मणिपुर राज्य म औद्योगिक क्रांति की सभावनाएँ बढ गई है। लघु एवं बडे उद्योगो की निकट भविष्य मे स्थापना होगी, जिससे मणिपुर मे उपलब्ध साधनो का उपयोग सभव होगा तथा आर्थिक दशा में क्रांतिकारी परिवर्तन हो सकेगा।

उद्योग धन्धे

औद्योगिक दृष्टि से मणिपुर देश के पिछड़े राज्यों में गिना जाता है। वास्तविकता यह है कि यहाँ एक भी ऐसा उद्योग नहीं है जो उल्लेखनीय हो। वाइ-खारी शक्कर कारखाने के अतिरिक्त राज्य में एक भी उद्योग नहीं था। छठी योजना में ल्वाइमारी उद्योग जैसे ही मध्य श्रेणी के अन्य उद्योग लगाने की योजना बनाई गई, जिनमें स्टार्च और ग्लूकोज बनाने का कारखाना, सीमेंट के लघु कारखाने तथा बाँस के टुकड़े बनाने का कारखाना आदि हैं। इन कारखानों से शीघ्र उत्पादन की सम्भावना है।

औद्योगिक उत्पादन कृषि, वन सम्पदा तथा खनिज सम्पदा पर निर्भर करते हैं। मणिपुर की भूमि उर्वर है, वन सम्पदा बहुतायात में है और पर्वत शृंखलाएं खनिज भंडार युक्त हैं किन्तु इन सब बातों के होते हुए भी मणिपुर में औद्योगीकरण सम्भव नहीं हो सका है। यहाँ लगभग 4% जनसंख्या ही उद्योगों में काम करती है जिसमें 3 5% गृह उद्योगों में कार्यरत हैं। मणिपुर की भौगोलिक स्थिति, ऊबड़-खाबड़ धरातल, दुर्गम मार्ग यातायात एवं परिवहन साधनों की सुविधा का अभाव, तकनीकी जानकारी का अभाव छोटा स्थानीय बाजार, तथा पूँजी का अभाव आदि मणिपुर के औद्योगीकरण के मार्ग में बाधक तत्व हैं। शक्ति की भी अब तक कमी थी किन्तु अब लोकताक जल विद्युत योजना के पूरे हो जाने के साथ यह समस्या तो हल हो गई है। रेल मार्ग के अभाव में यहाँ की सकड़ी व टेढ़ी मेढ़ी सड़कों पर बड़ी बड़ी मशीनें मणिपुर में लाना सम्भव नहीं है और सड़क के अतिरिक्त जलमार्ग भी नहीं है। परिणामस्वरूप मणिपुर में हाथ करघा और हस्तकला उद्योगों के अतिरिक्त किसी उद्योग का विकास सम्भव नहीं हो सका। कोई भारी या बड़ा उद्योग मणिपुर में नहीं है। परम्परागत कुटीर उद्योग ही यहाँ के उद्योग हैं।

1973 में खाडावोव (थौवाल जिला) में एक खाडसारी कारखाना लगाया गया था। इसकी क्षमता 60 टन गन्ने का रस (प्रतिदिन) निकालने की थी। 400-500 टन शक्कर का प्रतिवर्ष उत्पादन करने का लक्ष्य था, यदि गन्ना उपलब्ध हो सके तो। इस पर 13 20 लाख की लागत आई थी और इसमें जो उत्पादन हुआ वह लगभग 400 क्विंटल प्रतिवर्ष था। कारखाने द्वारा बनाई गई शक्कर की कीमत बाजार में उपलब्ध शक्कर से सैकडो गुणा अधिक थी, अत उत्पादन बद कर दिया गया है।

मार्च 1978 मे लोताहखुनओ (इम्फाल से 19 कि० मी० उत्तर-पश्चिम) मे मणिपुर स्पिनिंग मिल की स्थापना की गई। इसका निर्माण लगभग 10 करोड रु. की लागत से किया गया है। इसमे 25,520 तकुवे लगाए गए हैं और 800 लोगो को इसमें रोजगार दिया जा सका है।

हाथ करघा

मणिपुर हाथकरघा पर बनाए गए कलात्मक एव रग-बिरगे वस्त्रो के लिए देश ही नही विदेश म भी प्रसिद्ध है। राजमहलो से झोपडी तक प्रत्येक महिला को वस्त्र बनाने की कला सीखने की परम्परा अत्यत प्राचीन रही है। घाटी और पर्वत मे रहने वाली महिलाएँ समान रूप से करघे पर वस्त्र बनाने मे दक्ष होती हैं। मणिपुर मे लगभग तीन लाख हाथ करघे हैं जिसमें प्रत्येक मणिपुर की महिला पूर्णकाल या अशकाल के लिए कार्य करती हैं। वस्त्र निर्माण उद्योग परम्परा तथा सस्कृति का अभिन्न अग हैं। प्रत्येक महिला आज भी ऊँचे से ऊँचे पद पर कार्य करते हुए भी वस्त्र बनाती है। बाल्यकाल से ही प्रत्येक लडकी को यह कला सिखाई जाती है और विवाह के लिए यह अनिवार्य योग्यता मानी जाती है।

हाथ करघे के लिए प्रत्येक घर मे एक अलग स्थान निर्धारित होता है जिसमे अवकाश के समय महिलाएँ वस्त्र बनाती हैं। ये वस्त्र सूती, रेशमी, नकली रेशम तथा स्टेपल धागे के बनाए जाते हैं। फनेक (स्त्रियो की लूगी) चद्दर, पलग की चादर, तौलिए, अगोछे, साडी, मच्छरदानी पर्दे, टेबुलक्लाथ, कमीज व कुर्ते का कपडा, साफे आदि वस्त्र इन करघो पर बनाए जाते हैं। एक विशेष प्रकार की रजाई जिसे "लैशमाफो" कहते हैं भी बनाई जाती है। रगो की विविधता एव कलात्मकता के कारण इन वस्त्रो की देश विदेश मे भारी माँग है। सूती और ऊनी धागे से बनी, स्त्री-पुरुषो के लिए बनाई गई शालें भी कलात्मकता के कारण मणिपुर के बाहर भी बहुत लोकप्रिय हैं। अब हाथ करघे

के स्थान पर धीरे धीरे पावरलूम का प्रचलन भी हो रहा है। यदि सभी हाथ-करघों के स्थान पर स्वचालित करघों का प्रयोग होने लगे तो यह लघु उद्योग बहुत बड़ी मात्रा में उत्पादन करने मे सक्षम हो सकता है और मणिपुर की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन आ सकता है।

इस उद्योग के सम्मुख अनेक समस्याएँ हैं जैसे बाहर से सूत मँगवाना, यातायात का भारी भाड़ा, मील के वस्त्रों से प्रतिस्पर्द्धा, सूत बचने वाले तथा तैयार माल को खरीदने वाले दूकानदारों का लाभ कमाना आदि। इनमें से कुछ समस्याओं को हल करने के लिए पाँच सौ से अधिक बुनकर सहकारी समितियाँ बनाई गई हैं जो सदस्यों को उचित दामों पर सूत बचती हैं और तैयार माल खरीदती हैं। मणिपुर के इस उद्योग का यदि प्रचार किया जाए खूब विज्ञापन दिए जाएँ तो इसके उत्पादन की माँग बहुत बढ सकती है।



हाथ करघ पर वस्त्र निर्माण करती मणिपुरी महिलाएँ

कृषि के बाद हाथकरघा उद्योग मणिपुर का प्रमुख उद्योग है। सातवीं ईस्वी से मणिपुर में इस उद्योग के प्रचलन का उल्लेख मिलता है। प्राचीन काल मे यहाँ पहाड़ों में बहुत कपास बोया जाता था तथा उसको कातकर सूत बनाया जाता था। स्थानीय उत्पादकों से ही सभी तरह के वस्त्र बनाए जाते थे और इस दृष्टि मणिपुर स्वावलम्बी था। रंगाई तथा छपाई का काम भी यहीं किया जाता था।

रगों के लिए विभिन्न पौधों और पेड़ों की छालों का उपयोग किया जाता था और आज भी देशी तरीके से रंग बनाए जाते हैं। कोई घर ऐसा नहीं जिसमें हाथ करघा न हो।

हस्तकला

कढ़ाई-बुनाई, कसीदाकारी, धातु के बर्तन बनाना, बांस से विभिन्न कलात्मक एवं उपयोगी वस्तुएँ बनाना, गुड़िया बनाना, फर्नीचर बनाना, आभूषण बनाना यहां के हस्तकला उद्योगों में प्रमुख उद्योग हैं। कढ़ाई-बुनाई और कसीदाकारी प्रमुख गृह उद्योग है जो मणिपुरी महिलाओं को विरासत में प्राप्त सुरुचि का परिचायक है। प्रारंभ में यह कार्य केवल घर की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु किया जाता था किन्तु अब बाजार के लिए भी इसका उत्पादन घरों में किया जाता है।

धातु से बर्तन बनाना, चाकू, छुरी, दाव (पेड़ काटने का औजार) घास काटने के औजार, भाले-तलवारें आदि विभिन्न वस्तुएँ बनाई जाती हैं, जो स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। इनकी बनावट में हस्तकला कौशल दर्शनीय है। मिट्टी के बर्तन बनाने की भी विशिष्ट शैली है तथा यहाँ के मिट्टी के बर्तन जो रोज घरों में काम आते हैं कलात्मक एवं सुन्दर होते हैं।

बांस एवं बेंत की बहुतायत से उपलब्धि के कारण इनसे फर्नीचर, टोकरियाँ आदि के अतिरिक्त सजावट की विभिन्न वस्तुएँ चटाइयों आदि भी बनाई जाती हैं। फर्नीचर एवं सजावट की वस्तुओं की सुन्दरता तथा कलात्मकता देखते ही बनती है। यह सामग्री काफी सस्ती भी होती है, परन्तु राज्य के बाहर नहीं भेजी जा रही है। यदि ये वस्तुएँ बाहर भेजी जाएँ तो इनका स्वागत होगा। मणिपुर में 'टीक' और उनिङ्यों नामक बढ़िया इमारती लकड़ी उपलब्ध है जो संसार की श्रेष्ठ लकड़ियों में मानी जाती हैं। इन लकड़ियों से यहाँ के दक्ष कारीगर पलंग, सोफा, फर्नीचर, अलमारियाँ, मेज कुर्सी आदि वस्तुएँ बनाते है जो अन्य प्रान्तों में भी भेजी जाती है। लकड़ी पर की गई नक्काशी भी देखने योग्य होती है।

नृत्य करती मणिपुरी महिला, राधा-कृष्ण, लम्बा-धोइबी आदि की सुसज्जित वेशभूषा वाली गुड़िया अपनी कलात्मकता के कारण सजावट की उत्तम सामग्री है।

स्वर्णाभूषण बनाने की कला भी विशिष्टतापूर्ण है। यहाँ के स्वर्णाभूषण शुद्धता के तथा कलात्मकता के कारण भारत के विभिन्न भागों में लोकप्रिय हैं। यहाँ रहने वाले विभिन्न प्रदेशों के लोग यहाँ से बाहर ले जाते हैं या भेजते हैं। चांदी के भी सुन्दर आभूषण बनाए जाते हैं।

पशुपालन उद्योग

मणिपुर मे वर्षा वन, घास और चरागाहो की बहुलता के उपरान्त भी पशु-पालन उद्योग लोकप्रिय नहीं है। दूध और दूध के उत्पादन की पर्याप्त सभावनाए हैं, किन्तु इस ओर विशेष प्रगति नहीं हुई है। दूध व दूध से बनी वस्तुओ का यहाँ बहुत कम प्रयोग किया जाता है। पर्वतीय जन मासाहारी होने तथा घाटी के लोगो के मछली खाने के कारण दुग्ध उत्पादनो का नही के बराबर उपयोग किया जाता है। गाय भैंस का पालन कृषि के लिए किया जाता है किन्तु पर्वतो में कृषि के साथ मास प्राप्ति के उद्देश्य से इन्हें पाला जाता है। दूध के लिए इन पशुओं का पालन नेपाली लोगो के द्वारा किया जाता है। बस्तियो से दूर पहाड़ो पर इनकी अपनी पशुशालाएँ हैं, जिन्हें ये अपनी भाषा मे 'गोठ' कहते हैं, बनाते हैं तथा दूध, दही और घी बेचते हैं। यदि इस उद्योग का विकास किया जाए तो मणिपुर से दूध उत्पादनो को डिब्बो मे बन्द करके बाहर भेजा जा सकता है।

सूअर पालन का कार्य जनजातियो में आम है जबकि घाटी के "मैती" सूअर मुर्गी पालन को बहुत बुरा मानते हैं और यह निषिद्ध माना जाता है। पर्वतीय लोग भी यदि इस उद्योग का विकास करलें तो सूअर के मास को भी डिब्बों मे बन्द करके बाहर भेजा जा सकता है और सूअर तथा सूअरो का निर्यात भी किया जा सकता है। किन्तु फिलहाल यह कार्य घर की आवश्यकताओ को पूरा करने या कभी दो-चार पशु बाजार में बेचने के लिए पाले जाते हैं।

मछली व मुर्गी पालन

मैती लोग केवल मछली ही खाते हैं जबकि जनजातियों के लोग मछली-मुर्गी आदि सब कुछ खाते हैं। अभी मणिपुर मे मछली बाहर से आयात की जाती है, विशेष रूप मे सूखी मछली। मणिपुर मे झीलो और जलाशयो की अधिकता है अत यदि मछली पालन की ओर ध्यान दिया जाए तो मणिपुर मछली की आवश्यकता को पूरी कर सकता है और मछली का निर्यात भी सभव हो सकता है। डिब्बो मे बद मछली तथा सूखी मछली का निर्यात सभव है। मणिपुर की सब्जियाँ और मछली, चावल के समान स्वादिष्ट होती है।

मुर्गी पालन से मास व अण्डे प्राप्त होते है। अभी मछली, मुर्गे व अण्डे बहुत मँहगे हैं किन्तु इन व्यवसायो के विकास से आवश्यकता की पूर्ति और जन जीवन मे समृद्धि सभव है।

मधुमक्खी पालन

यहाँ के घरों, खेतों में तथा वनों में भाँति-भाँति के फूल मिलते हैं। मधुमक्खी पालन के लिए यहाँ अनुकूल वातावरण है, यदि इसका विकास कर लिया जाए तो शहद उत्पादन में वृद्धि हो सकती है और इसको बोतलों में भरकर बाहर भी भेजा जा सकता है।

फलों का रस मुरब्बा या अचार बनाना

मणिपुर में संतरा, अनानास, आम, आंवला तथा मिर्च आदि खूब पैदा होते हैं। यातायात की सुविधा के अभाव में निर्यात संभव नहीं है किन्तु इनका रस निकालकर बोतलों में भरकर तथा डिब्बों में बंद करके बाहर भेजा जाता है। इसके कुछ कारखाने काम कर रहे हैं। सेव के बगीचे भी लगाए गए हैं, अनार भी उत्पन्न होता है और संतरा तो बहुत मीठा होता है। इन सबका उपयोग भी किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के मुरब्बे या अचार बनाकर निर्यात करना आरंभ किया गया है। भविष्य में इस उद्योग के भी और अधिक विकास की संभावना है।

मूगा और रेशम उद्योग

रेशम उद्योग मणिपुर में परम्परागत रूप से अज्ञात काल से प्रचलित है। मणिपुर की जलवायु तथा मिट्टी रेशम के कीड़े पालने के लिए पेड़ पौधों के लिए आदर्श है। मालबरी, ओक आदि लगाकर उन पर रेशम के कीड़े प्राचीनकाल से ही पाले जाते रहे हैं। मूगा, मालबरी तथा एरी तीन प्रकार के रेशम का उत्पादन मणिपुर में होता है। ' इकोनोमिक प्रोडक्टस आफ इंडिया" नामक पुस्तक में जार्ज वॉट ने मणिपुर में रेशम उत्पादन तथा बनाने, बुनने आदि का विस्तार से वर्णन किया है। साथ ही उन्होंने मणिपुर के रेशमी वस्त्रों की प्रशंसा भी की है। उनका मत है कि चीन से पहले मणिपुर में रेशम उद्योग प्रचलित था तथा यहाँ से ही चीन के लोगों ने इसे सीखा है। ओकटसर सिल्क के उत्पादन के लिए एक विभाग स्थापित किया गया है और रेशम के कीड़े पालने के लिए बहुत बड़े क्षेत्र में पौधे लगाए गए हैं। उत्पादन आरंभ हो चुका है और भविष्य में रेशम उत्पादन के साथ ही उपलब्ध धागे के वस्त्र बनाने की संभावना है।

छोटे मशीन उद्योग

सम्प्रति मणिपुर में घड़ी, रेडियो, ट्रांजिस्टर, टेलीविजन, साइकिल ट्यूब, कीलें आदि वस्तुएँ बनाई जाती हैं। प्लास्टिक इण्डस्ट्री खोलने की योजना हाल ही मे बनाई गई है।

नमक बनाना

मणिपुर में "घूमनाबी" नामक पौधे की पत्तियों का नमक के लिए उपयोग किया जाता था। 1195 ई॰ से (राजा थवानथाबा के समय) नमक बनाने के उद्योग का ऐतिहासिक विवरण मिलता है। मणिपुर में नमक के लिए 35 से 60 फीट गहरे कुएँ खोदे जाते थे। उनमें ओक वृक्ष की दीवार लगाई जाती थी, जिसको "लैनुप" (एक प्रकार की देशी सिमेंट) से चिपकाया जाता था। इन कुओं को "खोङ" कहा जाता था, जिनकी संख्या 80 बताई जाती है। इन कुओं के खारे पानी को उबालकर नमक तैयार किया जाता था। मणिपुर इन कुओं के जल से बनाए गए नमक पर वर्षों तक निर्भर रहा। थौबाल से कुछ दूरी पर एक नदी में चन्द्रखोङ नामक स्थान पर आज भी नमक के 2-4 कुएँ हैं। धार्मिक पर्वों एवं उत्सवों में आज भी इस देशी नमक का ही प्रयोग किया जाता है। प्राचीन काल में सिखोङ, निङेल और वैखोङ स्थान नमक बनाने के लिए प्रसिद्ध थे।

चमड़े का सामान, खाने पकाने के मिट्टी, पीतल तथा कांसे के बर्तन बनाना, लोहा बनाना तथा चूना बनाना भी यहाँ के प्राचीन उद्योग थे। 1871 ई॰ से यहाँ कांच व उसका सामान भी बनाया जाता था। ये सभी मणिपुर के प्रमुख कुटीर उद्योग थे।

पर्यटन उद्योग

मणिपुर के दर्शनीय स्थलों के विवरण से स्पष्ट है कि मणिपुर में पर्यटन उद्योग की संभावनाएँ अपार हैं। यहाँ की जलवायु तथा प्राकृतिक सौंदर्य पर्यटकों के आकर्षण बिन्दु हैं। इस उद्योग का विकास यातायात की सुविधाओं के अभाव तथा मणिपुर के संबंध में अत्यल्प जानकारी के कारण नहीं हो पाया है। एक बाधा और भी है मणिपुर में भारत के अन्य प्रदेशों से आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को "इनरलाईन परमिट" लेना होता है, जो दीमापुर में नागालैंड सरकार देती है और इम्फाल में मणिपुर सरकार। इस परमिट में यात्रा का उद्देश्य

तथा प्रवास के समय की निश्चित सूचना देनी पडती है और समय समाप्त होने पर लौटना पडता है या समय बढाना पडता है। यह असुविधा भी इस उद्योग के विकास के मार्ग में बाधक है।

पर्यटकों को रहने-खाने, पानी तथा यातायात की सुविधा की आवश्यकता होती है। मणिपुर में होटल व्यवस्था फिलहाल संतोषजनक कही जा सकती है किन्तु पानी की अव्यवस्था से व्यापारिक प्रतिष्ठानो के मणिपुर आने वाले प्रतिनिधि परेशान हो जाते हैं। पोखरी के पानी से नहाना धोना होता है और नल होते हुए भी उनमें पानी न आने से उन्हें असुविधा होती है। नगर परिषद के द्वारा सडको की मरम्मत, देखरेख और गलियो की सफाई की भी व्यवस्था की जा रही है। सभी सार्वजनिक स्थानो एवं दर्शनीय स्थलो की समुचित सफाई अपेक्षित है। पर्यटन उद्योग हेतु पर्यटको की सुविधा का विशेष प्रबंध किया जाना चाहिए। साथ ही पानी और सफाई की युद्ध स्तर पर व्यवस्था की जानी चाहिए। व्यक्तिगत स्तर पर शरीर, वस्त्र एवं घरो की अपूर्व स्वच्छता रखने वाले मणिपुर के सार्वजनिक जन-जीवन में स्वच्छता की व्यवस्था की जा रही है। यदि इन व्यवस्थाओ को पूरा कर दिया जाए और मणिपुर में विद्रोही गतिविधियों से अशान्ति उत्पन्न न की जाए तो पर्यटन उद्योग से मणिपुर सरकार को राजस्व प्राप्त हो सकता है तथा इस व्यवसाय में हजारो लोगो को रोजगार प्राप्त हो सकता है।

वास्तव में मणिपुर में प्राकृतिक बाधाओ के कारण बड़े उद्योग नही लगाए जा सकते किन्तु लघु उद्योगो के लिए यह आदर्श स्थान है और कुछ लघु उद्योगो के लिए तो मानो प्रकृति ने इस धरती को वरदान ही दिया है। उनमें पर्यटन उद्योग सबसे महत्वपूर्ण है और इसके विकास के साथ यहाँ के हस्त करघे एवं कलाओ के लिए एक विशाल बाजार मिल सकता है। इस ओर ध्यान देने की। आवश्यकता है

जन जीवन

मणिपुर के निवासी मंगोलियन या हिन्द-मंगोलियन जाति के माने जाते हैं। मणिपुर के मूल निवासियों की शारीरिक संरचना तथा चेहरे की बनावट मंगोल जाति जैसी है, परन्तु उनमें से बहुत से ऐसे लोग भी हैं जिनका शारीरिक गठन आर्य जाति से मिलता है। डा० ब्राउन ने भी आर्य एवं मंगोल जाति की मिली-जुली बनावट का उल्लेख किया है। वास्तविकता यह है कि मणिपुर विभिन्न जातियों का आश्रय स्थल रहा है, इसलिए शारीरिक संगठन में विविधता आ जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इस समय इसके निवासियों को विद्वान निम्न प्रमुख चार विभागों में रखते हैं - (i) मैते (जिसमें अनुसूचित जाति लोइ भी सम्मिलित हैं।) (ii) विष्णुप्रिया (iii) पर्वतीय जन, तथा (iv) मणिपुर मुस्लिम।

मैते जाति, लोइ जाति और मुस्लिम लोग सामान्यतः घाटी में रहते हैं। मैते लोग असम, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, बंगला देश और बर्मा में भी रहते हैं। पर्वतीय जन जातियों में तांखुल, माओ, मरम, कबुई, कुकी, आदि जाति के नागा व आधे नागा तथा गैर नागा जन-जातियों के लोग रहते हैं। विष्णुप्रिया लोग कछार, सिलहट व त्रिपुरा निवासी हैं। 1981 की जनगणना के अनुसार मणिपुर की जनसंख्या 14,33,691 है।

विभिन्न समय और स्थानों से प्रव्रजन हुआ होगा, अतः यहाँ भाषा, वेश-भूषा, खानपान, निवास एवं धर्म संस्कृति में कल्पनातीत विविधता दिखाई देती है। सामान्यतः यहाँ के लोग स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट होते हैं। प्रकृति की उदारता के फलस्वरूप निश्चिन्तता का साम्राज्य है। घाटी में बसने वाले मैते समाज की सभ्यता एवं संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है। उनके जीवन में कला का प्रमुख स्थान है तथा सुरुचि, सम्पन्नता उनके जीवन की विशिष्टता है।

मैते

मैते जाति के लोग मणिपुर की घाटी बराक नदी के बेसिन में रहते हैं। इनमें सभी वैष्णव धर्म को मानने वाले हिन्दू हैं किन्तु इधर कुछ वर्षों से कुछ लोग अपने को हिन्दू मानने को तैयार नहीं है तथा उन्होंने अपने नामों के साथ सिंह एवं शर्मा शब्दों को छोड़ दिया है और मैते शब्द लगाते हैं तथा अपने धर्म को सनामही आदि नाम देते हैं। स्त्रियों के नाम के पूर्व कुमारी या श्रीमती लगाया जाता है किन्तु इन में बालिका से बूढ़ी तक के नाम के साथ देवी शब्द



कबुई नागा दम्पति

का प्रयोग किया जाता रहा है। अब मैते धर्म संस्कृति की पुनः प्रतिष्ठा के नाम पर देवी के स्थान पर चानू शब्द का प्रचलन हो रहा है।

"मैते" शब्द सन् 33 मे निङ्थिजौ वश के लिए प्रयुक्त होता था, जो बाद मे सातो वशो के लोगो के लिए प्रचलित हो गया, क्योंकि अन्य वशो को मैते वश ने अपने अधीन कर लिया था। बाद में जब भारत के अन्य भागो से भी आप्रजन हुआ तो उन्हे भी मैते कहा गया। अब "मैते" शब्द मे और भी अर्थ विस्तार हो गया है और मणिपुर के जन जातीय नागा, अर्द्ध नागा, कुकी-कबुई आदि भी मैते ही माने जा सकते हैं। वास्तव में ये कुकी-चीन समूह के लोग हैं। टी सी. हडसन ने मैते शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए कहा है—मीन मनुष्य और ते—भिन्न। कुछ लोग चीन-चीना तथा श्यामी भाषा के 'मोय' शब्द से भी इसका सम्बन्ध जोडते हैं। जो मैते नही हैं, उनके लिए "मयाङ" (विदेशी) शब्द प्रचलित है। मणिपुर मुस्लिम "पाङल्ल" कहे जाते हैं। बगाल से आने के कारण बगाल से पाङल शब्द बन गया होगा, ऐसा लोगो का अनुमान है।

मणिपुर की जनजातियाँ

मुख्य रूप से पर्वतीय जातियो को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—नागा तथा अनागा जातियाँ। अनागा जातियो को कुकी-चिन भी कहा जाता है। नागा जनजातियो मे—ताङ्खुल, कबुई, माओ, मरम तथा मरिंग जातियाँ सम्मिलित की जाती हैं। राज्य के उत्तरी, उत्तर पश्चिमी तथा पूर्वी भागो मे इन जातियों का निवास है। कुकी-चिन वश की अनागा जन-जातियो मे थोडो, पाइते, मार, अनाल, ङाङ्ने सिमते, होकिप, पाओमि, कोम तथा जो प्रमुख जन जातियाँ हैं, जो मणिपुर की दक्षिणी पर्वतमालाओ म निवास करती हैं। इन जन जातियो की यहाँ तीन परम्पराएँ हैं गाँव-बूढा, नरमुड आखेट एव मोरङ। इन तीनो का यहाँ विवेचन किया जा रहा है।

गाँव का बूढा या गाँव का राजा

प्रत्येक पर्वतीय गाँव का एक प्रधान होता है जिसको गाँव-बूढा कहा जाता है। प्रत्येक जाति की भाषा में अलग-अलग शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिनका अर्थ गाँव का राजा होता है। अग्रेजी शब्द "हेडमैन (Head man) भी प्रयुक्त होता है। गाँव का राजा वश परम्परा से होता है। कभी-कभी गाँव के सभी परिवारो के मुखिया मिलकर किसी व्यक्ति को राजा नियुक्त करते हैं और वह अपने जीवनकाल मे इस पद पर बना रहता है। गाँव के प्रत्येक सामाजिक एव धार्मिक कृत्यों मे वह प्रमुख स्थान रखता है। गाँव के लोगों के द्वारा

शिकार करने पर या उत्सवों के अवसर पर पशु काटने पर राजा को पशु का विशेष अंग भेंट किया जाता है। गाँव के युवक राजा का मकान बनाने या मरम्मत करने तथा उसके खेतों में काम करने में सहायता करते हैं। चावल से बनाई गई 'जीयर" सर्वप्रथम गाँव के राजा को भेंट की जाती है। सम्पूर्ण गाँव के निवासी राजा के प्रति श्रद्धा-भक्ति रखते हैं।

गाँव के धार्मिक कार्यों का संचालन पुरोहित करता है, किन्तु राजा की उपस्थिति अनिवार्य होती है। वह गाँव का सर्वोच्च नागरिक होता है। वही उत्सव, पर्व, त्योहार, बीज बोने, काटने आदि का श्रीगणेश करता है। गाँव की सुरक्षा का उत्तरदायित्व भी राजा पर ही होता है। कभी-कभी जब गाँव के लोग आपस में लड़ते थे, नरमुंड आखेट भी करते थे। राजा का महत्त्व सुरक्षा की दृष्टि से आज से कहीं अधिक था। राजा को सलाह देने के लिए एक समिति होती है। इस सलाहकार समिति के सदस्य राजा को सभी महत्त्वपूर्ण विषयों में सलाह देते हैं। वह समय-समय पर सलाहकार समिति की बैठकें अपने निवास स्थान पर आयोजित करता है। वह प्रत्येक सभा की अध्यक्षता करता है। कृषि के लिए भूमि आवंटन, जंगल काटना, जलाना आदि में निर्णय भी वही लेता है। किन्तु वह जो भी निर्णय लेता है वे सलाहकारों की सलाह से लिए जाते हैं। वह अपनी इच्छा से निर्णय नहीं ले सकता है। उसकी शक्ति पर सलाहकार सदा अंकुश रखते हैं। वास्तव में यह सलाहकार समिति ही गाँव की सर्वोच्च सत्ता है। सलाहकार समिति के सदस्य कबीले या परिवारों के मुखिया होते हैं।

गाँव का राजा और सलाहकार समिति कार्यकारिणी, प्रशासकीय एवं न्यायपालिका के कार्य करती है। समिति अपने निर्णय लागू करती है। व्यक्तिगत या सामूहिक विवादों का निर्णय करती है। जो भी परम्परागत विधि-निषेध हैं, उनका पालन करने के लिए गाँव के लोगों को बाध्य करती है। दोषी व्यक्ति को दंडित करती है। बड़े से बड़े अपराध का फैसला इन्हीं के द्वारा किया जाता है और लोग अदालतों में शायद ही कभी जाते हैं। यह समिति गाँव में सड़कें, घर या पुलों के निर्माण के निर्णय लेती है। पर्व, उत्सव या त्योहारों के विषय में, जोतने बोने तथा फसल काटने, झूम के लिए जंगल जलाने आदि के निर्णय लेती है। गाँव में मेलों या बाजार का आयोजन भी इसी समिति का कार्य होता है। गाँव के चावल को एक जगह एकत्र करके भंडार बनाना उसको बाँटना गाँव के लिए सामूहिक धन धान्य रखना तथा आवश्यकतानुसार उसका उपयोग करना। ये सारे कार्य भी गाँव का राजा तथा सलाहकार करते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में भी भीख माँगने की प्रथा का सर्वथा अभाव है, क्योंकि व्यक्तिगत

रूप से आर्थिक सकट मे होने पर सपूर्ण गाव वाले उसकी कठिनाई का निवारण करते हैं। अकाल की स्थिति मे सामूहिक अन्न भडार से सभी को वितरित किया चावल जाता है। चोरी की कोई घटना नही होती है। किसी भी घर मे ताला नही लगाया जाता है।

नरमुड आखेट

जन जातीय परम्पराओ मे नरमुड आखेट की विचित्र परम्परा प्रचलित थी। आज यह प्रथा केवल इतिहास का एक अध्याय है। एक जाति के कबीले भी आपस मे लडते थे। आपसी युद्ध अक्सर होते रहते थे जिनमे एक कबीले या गाँव के लोग दूसरे गाँव या कबीले के लोगो के सिर काटकर विजय चिह्न के रूप मे ले जाते थे और गाँव के बूढे के घर या मोरुङ को उन सिरो से सजाते थे।

नरमुड आखेट के कई कारण थे। प्रमुख कारण तो आपसी शत्रुता ही थी, किन्तु अधविश्वासो के कारण भी यह प्रथा प्रचलित थी। अच्छी फसलो, सुख-शाति एव समृद्धि के लिए, पूर्वजो की आत्मा को प्रसन्न करने, परलोक को सफल बनाने आदि के लिए, नरमुड आखेट की परम्परा प्रचलित थी। गाँव प्रधान के घर मोरुङ की नींव लगाते समय (नागाओ मे) तथा गैर नागाओ मे ग्राम प्रधान को दफनाते समय नरमुड धार्मिक आवश्यकता थी।

नरमुड का आखेट करके लाने वाले व्यक्ति को वीर-योद्धा माना जाता था, वह विशेष वेश-भूषा पहनने का अधिकारी हो जाता था तथा गले मे कौडियों की तथा काँच के मनको की विशेष माला पहनने का अधिकारी हो जाता था। इस पोशाक को पहनने की लालसा प्रत्येक नागा नवयुवक को रहती थी। नरमुड आखेट करके युवक विशेष सम्मान का अधिकारी हो जाता था। ऐसे व्यक्ति से कुमारी कन्याएँ विवाह के लिए उत्सुक रहती थी और उसको श्रेष्ठ सुन्दरी को चुनने का अधिकार प्राप्त हो जाता था। इन कारणो से वर्षों तक यह प्रथा मणिपुर के नागा तथा गैरनागा जातियो मे प्रचलित रही थी।

कुमार शयन शालाएँ : मोरुङ

जन-जातियो मे लडके या लडकी को किशोर होते ही घर छोडकर कुमार शयन शाला मे जाकर सोना अनिवार्य था। लडको और लडकियों के लिए ये अलग-अलग लम्बे घर बने हुए थे। लडको की शयनशाला मे किसी स्त्री का जाना तथा लडकियो की शयन शाला मे पुरुष का जाना निषिद्ध था। इन शयन शालाओ को 'मोरुङ' कहते थे किन्तु वास्तव में भिन्न-भिन्न जातियो मे



इनके लिए भिन्न-भिन्न शब्द प्रचलित थे। आओ-अरिचू लोथा-चम्पो, अङामी-किचुकी तो सेमा-डेका चाङ कहते थे। जबकि ताखुल लोड शिम। कभी-कभी गांव के मुखिया का घर ही मोरुङ के रूप में काम आता था। रात्रि का भोजन करने के पश्चात लड़के एवं लड़कियां अपने घरों से इन शयन गृहों में सोने चले जाते थे, जहां से वे प्रातःकाल अपने घर लौटते थे। इन घरों में ही बालक-बालिकाओं को अपनी प्रथाएं-परम्पराएँ, लोकगीत-कथाएँ आदि सीखने का अवसर मिलता था। विवाह होने तक ये लोग इन्हीं शयन घरों के सदस्य रहते थे और विवाह के बाद ये अपने नए घरों में आकर रहते थे। सामूहिक जीवन पद्धति की शिक्षा-दीक्षा यहीं दी जाती थी।

समाज में नारी का स्थान

मणिपुरी नारी भारत के अन्य भागों में नारी की जो स्थिति है, उससे कहीं श्रेष्ठ स्थिति में है। इन्हें भारत के अन्य भागों में नारी को जो स्वतंत्रता प्राप्त है उससे कई गुणा अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है। इन्हें किसी प्रकार का पर्दा नहीं करना पड़ता है और न ही इन्हें सिर ही ढकना पड़ता है। ये वास्तव में जीवन की गाड़ी को चलाने में बराबर की सहयोगी है और यदि यह कहा जाए कि इनका दायित्व पुरुष की तुलना से कहीं अधिक है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। कारण यह है कि मणिपुरी नारी बहुत ही परिश्रमी है। विवाहित एवं अविवाहित स्त्रियों की वेशभूषा में भी कोई अन्तर नहीं होता है। हां, कुछ वर्ष पूर्व अविवाहित लड़कियां अपने बालों में चोटी बांधती थी और आगे से बालों को काटा ही जाता था किन्तु अब बाल काटे भी नहीं जाते है और न बांधने के निषेध का भी कठोरता से पालन किया जाता है। वेशभूषा का अन्यत्र उल्लेख किया जा चुका है।

स्वच्छता के संदर्भ में नारी द्वारा किये जाने वाले गृह कार्यों का भी उल्लेख किया जा चुका है। एक ओर जहां घर के बाहर आपको बाजार में दुकानों पर विविध सामग्री बेचती दिखाई देती हैं, तो दूसरी ओर झीलों-नदियों में मछली पकड़ती, खेतों में काम करती दिखाई देती हैं। प्रत्येक विवाहित तथा अविवाहित मणिपुरी महिला के नाम के अंत में देवी शब्द लगाया जाता है। वास्तव में मणिपुरी महिला सही अर्थों में देवी है। राजमहलों से झोंपड़ी तक की मणिपुरी महिला मछली पकड़ने और वस्त्र बनाने का काम करती हैं। कपड़ा बुनने में दक्ष होना तो विवाह के लिए अनिवार्य शर्त है। कपड़ा बुनना मणिपुरी नारी का अतिरिक्त कार्य है, जो अन्यत्र नहीं किया जाता है। भारत में मणिपुरी नारी से

अधिक परिश्रमी नारी नहीं मिल सकती है। परिश्रमी ही नहीं ये बहुत कुशल एवं दक्ष व्यापारी भी होती हैं। इम्फाल या मणिपुर के गाँव के बाजारों में दुकानदार आपको महिलाएँ ही मिलेंगी। क्रय-विक्रय का कार्य महिलाएँ ही करती हैं। व्यापार में जिस व्यावसायिक बुद्धि, कुशाग्रता, दक्षता और व्यवहार कुशलता की आवश्यकता होती है, वे सब इनमें पाई जाती हैं।

विवाह सामान्यतः माता-पिता ही तय करते हैं इस बात का अन्यत्र उल्लेख किया जा चुका है, किन्तु यो इन्हें जीवन-साथी चुनने की पूरी छूट है। दहेज प्रथा का अभाव, आत्म निर्भरता, समानता आदि बातों के कारण मणिपुर में नारी की सामाजिक स्थिति ऊँची है। आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भरता ऐसा तत्व है, जिसके कारण मणिपुरी महिला को समानता का अधिकार प्राप्त है तथा कभी-कभी तो इस दृष्टि से नारी का महत्व पुरुष से भी अधिक हो जाता है। आत्मनिर्भर होते हुए भी मणिपुरी महिला कुशल गृहणी है, वह घरके सभी कार्य स्वयं करती है। माता पुत्री, पत्नी, बहन, आदि के रूप में पुरुष के प्रति वह ममतामयी, स्नेहमयी एवं प्रेममयी है तथा उसमें समर्पण त्याग एवं बलिदान की भावना कूट-कूटकर भरी है। बहुपत्नी विवाह का मैतै समाज में प्रचलन है, किन्तु सौतिया डाह की प्रचण्डता का अभाव है और पति के द्वारा दूसरा विवाह करने पर भी मणिपुरी महिला पति के प्रति समर्पित रहती है। वह इसको भाग्य का दोष कहकर सतोष कर लेती है। मेरे विचार से गौडीय वैष्णव भक्ति परम्परा और राधा के आदर्श ने उन्हें यही शिक्षा दी है। मैतै समाज में श्री राधा-कृष्ण भक्ति का सर्वस्व ही है।

पति के प्रति उसमें समर्पण भाव है परिवार में वह समर्पित रहती है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वह जागरूक नहीं है। मणिपुरी महिला प्रबुद्ध है। राजनैतिक या सामाजिक कार्यों में वह नेतृत्व करती है। सामाजिक समस्याओं से जूझती है। किसी भी अत्याचार-अन्याय के विरुद्ध वह चट्टान सी अडिग खडी हो जाती है। यहाँ कुछ ऐतिहासिक घटनाओं तथा अनुभवों के आधार पर इस तथ्य को प्रामाणित किया जा सकता है।

पन्द्रहवी शताब्दी में निडथा खम्बा राजा था, एक बार वह जब बर्मा पर आक्रमण करने गया तो ताखुल वश के जनजातीय लोगों ने मणिपुर की राजधानी को अरक्षित समझकर उस पर आक्रमण कर दिया किन्तु रानी लिन्थोइम्बी ने अन्य महिलाओं के साथ ताखुल आक्रांताओं से युद्ध किया और उन्हें अंत में सधि करके लौटना पडा। महिला नेतृत्व की यह प्रथम ऐतिहासिक घटना है।

विम्बावली मंजुरी : मणिपुरी मीरा

मणिपुरी महिलाओं में महाराज भाग्यचंद्र (1759-98 ई०) की पुत्री विम्बावली मंजुरी का भक्त-कवयित्री के रूप में उल्लेख करना आवश्यक है। बाल्यकाल से ही वे कृष्ण-भक्ति में निमग्न रहती थी, अतः इनके पिता ने विधिवत उनका विवाह श्रीकृष्ण विग्रह के साथ कर दिया। उनकी कृष्ण भक्ति और प्रेम को देखकर मणिपुरी लोगों ने उनको सिजा लँइरोबी या सिजा अङोओबी अर्थात् देव दीवानी या पागल कहना शुरू कर दिया और वे अब मणिपुर में सिजा लँइरोबी नाम से भी विख्यात हैं।

जीवन भर वे कृष्ण भक्ति में डूबी रही। बाद में पिता के साथ उसने नवद्वीप यात्रा की और अंत में राधा कुण्ड में भक्ति करते हुए स्वर्गधाम सिधार गईं। लोग उन्हें मणिपुरी मीरा भी कहते हैं और दक्षिण की भक्त अंडाल से भी उनकी तुलना करते हैं।

रानी गाइडिलू

तमिङलोग जिले के कबुई जनजाति में जदोनाङ नामक एक धार्मिक नेता हुआ, जिसने नागाराज का स्वप्न देखा था, किन्तु चार मणिपुरी व्यापारियों की हत्या का आरोप लगाकर 19 अगस्त 1931 को उसको फाँसी दी गई। उसको फाँसी लगाने पर गाइडिलू ने जदोनाङ के ब्रिटिशराज विरोधी आंदोलन का नेतृत्व संभाल लिया। वे भी बंदी बना ली गई। और उन्हें आजन्म कारावास की सजा दी गई। स्वतंत्रता के बाद 1947 में रानी गाइडिलू को जेल से छोड़ा गया। नेहरूजी ने ही गाइडिलू को रानी कहा था और उन्होंने ही उसको जेल से मुक्त कराया। जादोनाङ के आन्दोलन का कारण कूकी जनजाति से कबुई की परम्परागत शत्रुता भी थी। रानी को मुक्त किया गया किन्तु 1952 तक उन्हें मणिपुर में आने की अनुमति नहीं मिली। कूकी जनजाति से शत्रुता थी ही। इधर फिजोदल के भूमिगत नागाओं ने उसको अपना शत्रु मान लिया क्योंकि वे ईसाई धर्म के विरुद्ध थी। रानी का जीवन खतरे में था। वह 1960 के बाद फिर भूमिगत हो गई और नागा विद्रोहियों के विरुद्ध पुनः एक भूमिगत सेना का संगठन किया। 1966 में रानी ने अपने अनुयायियों के साथ आत्म समर्पण कर दिया। तबसे वह कोहिमा में रहती हैं। भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास में छादोनाङ के साथ रानी का नाम भी जुड़ गया है। मणिपुरी जनजातीय महिलाओं में वे एकमात्र महिला है जो राष्ट्रीय स्तर पर जानी जाती हैं।

नूपीलाम

मणिपुर के इतिहास में दो नूपीलाम या महिला युद्ध प्रसिद्ध हैं। यद्यपि मणिपुर में पुरुष वीरता में कम नहीं हैं, निडर हैं, कठोर हैं, धैर्यवान हैं और कष्ट सहने में उनका मुकाबला शायद ही कोई कर सके। ये बातें अंग्रेजों के द्वारा लिखी गई पुस्तकों से प्रमाणित हैं। तथापि जब तक अनिवार्य न हो किसी भी अन्याय या अत्याचार का विरोध करने के लिए महिलाएँ ही आगे आती हैं। राजाओं के शासन के दिनों से यही परम्परा रही है जो आज भी ज्यों की त्यों कायम है। उस समय भी और आज भी महिलाओं की माँग या 'दावी" (दावे) को ठुकराने की परम्परा नहीं है। स्त्रियों का मार्ग अहिंसापूर्ण होता है, अत पहले उनको ही भेजा जाता है। जब वे असफल होती हैं,तो पुरुषों की बारी आती है। महाराज चन्द्रकीर्ति (1834-44 तथा 1850-86) के शासनकाल में फसल काटने के समय जब पुरुषों को जगलो में हाथी पकडने की आज्ञा दी गई तो पुरुषों ने विरोध किया, किन्तु राजाज्ञा की गरिमा थी, विरोध कहाँ सह्य था। तब मणिपुरी महिलाओं ने राजा से माग की कि फसल कटने तक पुरुषों को हाथी पकडने नही भेजा जाए और राजा को मानना पडा।

पहला नूपी (महिला) लाम (युद्ध) 1904 में हुआ। उस समय मैक्सवेल नामक ब्रिटिश पौलिटिकल एजेन्ट था। अंग्रेजों के घर जला दिए गए। मैक्स-वेल ने आदेश दिया कि मणिपुरी लोग उनके घर वापिस बनाएँ। इस आदेश का महिलाओं ने सामूहिक रूप से विरोध किया था। मणिपुरी इतिहास में इसको प्रथम नूपीलाम के नाम से जाना जाता है।

1930 में पोलिटिकिल एजेंट ने एक नया कर लगा दिया और इसका भी महिलाओं ने विरोध किया। जब महिला-समूह के विरोध को दबाने के लिए वह आगे बढ़ा, महिलाओं ने उसको एक तालाब में उठाकर फेंक दिया था। एक बार लोकताक झील में मछली पकडने के सबध में विवाद उठ खड़ा हुआ। अंग्रेज अधिकारी एक नाव में बैठकर वहाँ पहुँचे लोग उनका नाम स्टयुवार्ट बताते हैं। महिलाओं ने अपनी माँग के लिए प्रदर्शन किया और तुरन्त महिलाओं की माँग को स्वीकार कर लिया। कि तु इन घटनाओं को युद्ध का नाम नही दिया गया है।

दूसरा नूपीलाम 1939 में हुआ। मणिपुर में उस साल बाढ से फसल को नुकसान हुआ था, किन्तु फिर भी मणिपुर की चावल की आत्म-निर्भरता पर विशेष प्रभाव नही पडा था। इधर चावल का निर्यात किया जा रहा था, अत चावल की कीमतें आकाश छूने लगी। लोगों के लिए चावल खरीदना कठिन

हो गया। तत्कालीन महाराजा चूराचांद नवद्वीप तीर्थ यात्रा पर गए हुए थे। राज्य दरबार का अधिवेशन चल रहा था, महिलाएँ सामूहिक रूप से दरबार के सामने जा पहुँची और चावल के निर्यात पर प्रतिबंध लगाने की माँग की। किन्तु दरबार के अध्यक्ष अंग्रेज आई० सी० एस० आफिसर ने यह कहकर उनकी माँग को ठुकरा दिया कि महाराजा ने निर्यात का आदेश दिया था, अतः उनकी अनुपस्थिति में प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता। इस पर महिलाओं ने मिस्टर शार्प को घेर लिया तथा तार घर तक ले गई। शार्प साहब तार देकर लौटना चाहते थे किन्तु महिलाओं ने तार का उत्तर आने तक उन्हें रुकने को बाध्य किया। 14 से 15 हजार के बीच स्त्रियाँ थीं, जिन्होंने उनका 'घेराव' किया था। यदि घेराव का इतिहास लिखा जाएगा तो भारत में घेराव का प्रारंभ इसी से मानना होगा। शार्प महोदय तार घर में रुकना नहीं चाहते थे। आसाम राइफल्स के शस्त्रधारी सैनिकों तथा महिलाओं के बीच मारपीट हुई, बीस महिलाएँ तथा सैनिक भी घायल हुए। दो दिन की भूखी प्यासी महिलाएँ दिसम्बर माह की रात में भी डटी रहीं और वे वहाँ से उस समय हटीं जब महाराजा का उत्तर आ गया कि चावल का निर्यात रोक दिया जाए।

इसी घटना के बाद महिलाओं और निखिल मणिपुरी महासभा (जो बाद में प्रान्तीय कांग्रेस बन गई) ने मणिपुर में विधान परिषद की स्थापना और जनता के प्रति उत्तरदायी शासन की माँग की जो बाद में मान ली गई।

मणिपुरी महिलाएँ जागरुक हैं आज भी वे राजनैतिक जलूस का नेतृत्व करती हैं। सामाजिक बुराइयों के विरोध में भी वे संघर्षरत हैं। नशाबंदी कार्यक्रम इनका स्वैच्छिक कार्यक्रम है। शराब, स्मैक आदि बेचने वालों तथा पीने वालों को पकड़कर ये थाने में ले जाती हैं। जब भी सेना या कोई सैनिक बल किसी बस्ती में घुसकर किसी भूमिगत विद्रोही को पकड़ना चाहती है, तो उनके रास्ते पर महिलाएँ सो जाती हैं और तलाशी के समय किसी भी प्रकार की अभद्रता नहीं की जाएगी, इस बात का आश्वासन पाकर ही वे उन्हें बस्ती में घुसने देती हैं।

आजकल वे प्रत्येक आफिस में पुरुषों के साथ काम कर रही हैं। सड़क पर सभी तरह के वाहन चलाती हैं। आरक्षी सेवाओं में भी कार्य करती हैं। किन्तु जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों से टक्कर लेने वाली महिलाएँ आज तक भी संसद या विधान सभा की निर्वाचित सदस्य नहीं बन सकी हैं और न ही बहुपत्नी विवाह को रोकने में सचेष्ट दिखाई देती हैं।

जन-जातीय महिलाएँ भी मणिपुरी मैतै महिला के समान ही स्वतंत्र हैं,

किन्तु बहुपत्नी प्रथा जैसी कुरीति से जनजातीय महिलाएँ मुक्त हैं। उसका वैवाहिक जीवन इस दृष्टि से कहीं अधिक सुखद है। शेष कार्यों में वे मणिपुरी महिलाओं के समान हैं। बच्चों को सभालना, घर के काम निबटाना, पूरे परिवार के लिए वस्त्र बुनना, बेटी को वस्त्र बनाना सिखाना, भोजन के लिए अन्न भंडार रखना, चावल से शराब व बीयर बनाना, तम्बाकू सुखाना, पशु पालन करना, भोजन बनाना आदि कार्य वे ही करती हैं। जगल से लकडी के भारी गठ्ठर पीठ पर लादकर लाती हैं धान कूटकर चावल निकालती हैं, खेतों में काम करती हैं, पति के साथ जगल में लकडी कटवाती हैं, खेतों की रखवाली करती हैं। रात को सबसे बाद में सोना और सबसे पहले उठना नित्य-नियम है। सबसे कठोर काम है पीठ पर टोकरी में बांस की नालियों में बहुत दूर से पानी लाना। कभी-कभी यह दूरी एक मील की चढाई तक होती है। घाटी में रहने वाली 'मैते" महिला से ये पर्वतीय महिलाएँ अधिक कठोर एव परिश्रमी होती हैं।

धार्मिक स्थिति

मणिपुर में मैतै धर्म का प्राचीनकाल में प्रचलन था। उस धर्म का वास्तविक स्वरूप क्या था, यह आज विवाद का विषय बन गया है। पौराणिक और लोक कथाओ एव प्रचलित प्रथाओ के आधार पर भी कुछ कहना कठिन हो गया है, क्योकि इसके वर्ग विशेष की भावना को ठेस पहुँचने और प्रतिक्रिया की सभावनाएँ हैं। फिर भी इतना तो कहना ही होगा की सृष्टिकर्ता गुरु सिदबा और देवी लैमारैन को माना जाता है, जो शिव और पार्वती के अवतार हैं। नवजागरण में विश्वास करने वाले इनको शिव-पार्वती से भिन्न बताते हैं। जनजागरण वालों का कहना है कि गरीब निवाज के शासन काल में अर्थात् 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मणिपुरी धर्म, सस्कृति तथा पुराणो को नष्ट कर दिया गया है। यह ऐतिहासिक सत्य भी है। इस आधार पर वे हिन्दू देवी-देवताओ के साथ मणिपुरी देवताओ का सबध जोडना भी अस्वीकार करते हैं। किन्तु कुछ लोगों के विचार से नोड्पोक निड्थौ की तथा पाथोइबी कथा मे (जिसको वे भी स्वीकार करते हैं) नोड्पोक निड्थौ की जो वेश भूषा चित्रित की गई है, उसके आधार पर वे शिवजी के अवतार माने जा सकते हैं। इसका अभिप्राय धार्मिक विवाद का हल प्रस्तुत करना या उसमें पडना उद्देश्य नही है। इतना ही पर्याप्त है कि मणिपुर के प्राचीन धर्म को शैव धर्म से सबधित बताया गया है। बाद में यहाँ शाक्त धर्म भी प्रचलित हुआ होगा, इसका प्रमाण इस प्रदेश का मैखलं नाम और देवी हियाड लाइरेम्बी की पूजा है। शैव और शाक्त मत मे मास-मदिरा के सेवन की प्रथा थी, यह यहाँ भी प्रचलित थी। किन्तु वैष्णव धर्म के प्रभाव से मास मदिरा ही नही किसी भी नशीली वस्तु के सेवन पर प्रतिबध लगा दिया गया। मैतै धर्म मे वन-देवी देवताओ की उमड्लाई के नाम से पूजा का विधान था। पूर्वजो की पूजा का भी विधान था। पाखम्बा को सर्प देवता के रूप में पूजा जाता था, तो सनामही को गृहदेवता के रूप में। वास्तव में हिन्दू पौराणिक

देवी-देवताओ तथा स्थानीय देवी-देवताओ से संबंधित धर्म, प्रथाओ परम्पराओ, पर्व-त्यौहारो आदि का शताब्दियो से जो सम्मिश्रण एवं संश्लेषण हुआ है, उसके परिणाम स्वरूप कुछ भी कहना असंभव है। भविष्य में शोध होने पर ही बात स्पष्ट होगी। पूर्वाग्रह तथा अंग्रेज लेखको के विचारो का अधानुकरण त्याग कर सत्यान्वेषण करने पर ही वास्तविकता प्रकट हो सकती है। प्राचीनकाल में निश्चय ही सारे संसार में आदिम धर्म का प्रचलन था और देश-काल और परिस्थितियों के संदर्भ में उस धर्म मे आवश्यकतानुसार परिवर्तन हुए हैं।

राजा खोंगेकचा, जिसका समय आठवी नवमी शताब्दी माना जाता है, के द्वारा जारी ताम्रपत्रो को (जिनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है) सत्य मान लिया जाए तो उस समय से ही आर्य संस्कृति एवं धर्म का प्रभाव स्वीकार करना होगा। नही तो पन्द्रहवी शताब्दी में कयाम्बा के शासनकाल से विष्णु पूजा के ऐतिहासिक प्रमाण हैं, अत उस समय से मणिपुर में वैष्णव धर्म का प्रादुर्भाव मानना ही होगा। उसी समय असम राज्य के साथ संबंध स्थापित हो चुके थे, यह असम के इतिहास से भी प्रमाणित है। असम में उस समय शंकरदेव द्वारा स्थापित वैष्णव धर्म प्रचलित था। अत निश्चय ही उस समय से वैष्णव धर्म मणिपुर के जनजीवन का अंग बना होगा। यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। महाराजा गरीब निवाज (1709-48) के शासनकाल में रामानंदी, निम्बार्क, मध्वाचार्य, गौडीय आदि वैष्णव सम्प्रदायो के प्रचलन के भी ऐतिहासिक प्रमाण हैं। जो हो गरीब निवाज के शासनकाल से गौडीय वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ जो परवर्ती शासको के काल में पल्लवित पुष्पित एव विकसित हुआ। श्री राधा कृष्ण की पूजा अर्चना यहाँ के जन-जीवन का अभिन्न अंग बन गई। श्री श्रीगोविन्दजी मणिपुर के जन-जीवन के केन्द्र बन गए तथा कला, संस्कृति, धर्म का विकास उनको सर्वोच्च सत्ता मानकर ही हुआ। आज तक इसी कारण से मणिपुर के मैतै समाज में गौडीय वैष्णव भक्ति का वर्चस्व बना हुआ है। किन्तु "मैतै" धर्म के आदिम देवता, मायबी आदि प्रथाए भी वैष्णव धर्म के समानान्तर चलती रही हैं। इनमें कभी विरोध नही था। इधर कुछ वर्षों में इस संश्लिष्ट धर्म को विघटित करने और परस्पर विरोधी बताने के लिए कोई गुप्त कार्य किया गया है, जिसके कारण विरोध के लिए विरोध किया जा रहा है। अनुमान है कि विदेशी शक्तियो का इसमें हाथ है।

जनजातीय धर्म और ईसाई धर्म

जन जातियों का अपना आदिम धर्म था जिसमें देवी-देवताओं, पूर्वजों, मृतात्माओं पेड़-पौधों से पशु-पक्षियों तक की पूजा तथा बलि का विधान भी था। नरबलि की प्रथा भी थी। किन्तु ईसाई मिशन कार्यकर्ताओं ने प्रशासकों के सहयोग सूझबूझ तथा निष्ठा के साथ इन्हें ईसाई बनाने में सफलता प्राप्त की। यद्यपि उनको प्रारंभ में विरोध का सामना करना पड़ा। कई लोग मारे भी गए, तथापि अंत में उन्हें सफलता प्राप्त हुई। इसका मुख्य कारण तो हिन्दू धर्म की कठोरता थी।

कहा जाता है कि जनजातीय लोगों का प्रतिनिधि मंडल (नागालैंड व मणिपुर का सम्मिलित) मणिपुर के महाराजा के पास इस प्रार्थना के साथ आया कि हमें हिन्दू बनालो। वास्तव में धर्म के मामले में महाराजा विवश थे। क्योंकि धर्म के संबंध में निर्णय का अधिकार ब्रह्म सभा के पास भेज दिया और वहाँ यह निर्णय दिया गया कि हिन्दू जन्म लेता है बन नहीं सकता और न बनाया जा सकता है। धर्म परिवर्तन की कोई संभावना नहीं। कहते हैं, इस घटना के पश्चात ही जनजातियों में ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ और विघटनकारी भावना का जन्म हुआ, जिससे मणिपुर ही नहीं सम्पूर्ण पूर्वांचल में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विद्रोह की आग भड़क उठी और यह शांत-हरा भरा क्षेत्र उस अग्नि की लपटों से जल उठा। अभी भी कुछ जनजातियाँ हैं जिन्होंने ईसाई धर्म ग्रहण नहीं किया है और कुछ जनजातियों में ईसाई नहीं बनने वाले लोग भी हैं। किन्तु ईसाई धर्म के प्रचारक निष्ठापूर्वक आज भी इस क्षेत्र में सक्रिय हैं तथा वे न केवल जनजातियों को बल्कि मैतै धर्म के मानने वालों तथा हिन्दुओं को भी ईसाई बना रहे हैं। हिन्दू धर्म की कट्टरता के कारण और ईसाई धर्म के पास धन, निष्ठा और साधनों की बहुलता के कारण इस क्षेत्र में लगातार ईसाईकरण हो रहा है। अंग्रेजी स्कूलों के माध्यम से भी, जो इस क्षेत्र में बहुत बड़ी संख्या में हैं और लोकप्रिय हैं, के माध्यम से भी धर्म का प्रचार किया जा रहा है।

अंग्रेजी शिक्षा की प्राथमिक शिक्षण संस्थाएं सर्व प्रथम माओ 1893 ई० में तथा बाद में उखरूल नामक स्थान में पेटिग्रियु महोदय के प्रयत्नों से प्रचलित हुई। पेटिग्रियु महोदय एक स्काटलैण्ड के ईसाई मिशनरी थे। दो अमेरिकन बाप-

टिस्ट मिशन दी नोर्थ ईस्ट इण्डिया जनरल मिशन, दी प्रेम बेटिरियन चर्च, दी रोमन कैथोलिक मिशन, दी सेवन डेएडवेनटिस्ट, इडिपेंडेंट चर्च ऑफ इण्डिया आदि विभिन्न ईसाई मिशनों के द्वारा इन जनजातियो का ईसाईकरण किया गया और किया जा रहा है।

यूरोपीय एव अमेरिकन मिशनों के द्वारा ईसाई धर्म का प्रचार किया गया है। अतः इन जनजातियो का तेजी से आधुनिकीकरण और पाश्चात्यीकरण भी हुआ है। निश्चय ही इन आदिम एव पिछडे वर्ग की जातियो को ईसाई मिशन ने आधुनिकता का प्रकाश दिखलाया है। शिक्षा का प्रचार प्रसार किया, सामाजिक बुराइयो को दूर किया, रोगो के उपचार किए हैं और आर्थिक दृष्टि से भी सहायता दी है। इन्हें समाज में यह सम्माननीय स्थान भी दिलवाया है, जो पहले कभी प्राप्त नहीं था। किन्तु अच्छाई के साथ बुराई भी जन्म लेती है। विघटनकारी भावना इन अच्छाइयो के साथ पनपी है, जिसने वैमनस्य, फूट, कलह और हिंसा के बीज बोए हैं। आधुनिक इतिहास इसी कारण रक्त-रजित हो गया है।

मुसलमान धर्म

महाराजा खगेम्बा के शासन काल म सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे 1606 ई० में उसके भाई सनातन ने कछार के राजा के साथ मणिपुर पर आक्रमण किया था। सनातन पराजित हुआ। खगेम्बा ने कछार के राजा के सैनिको को बदी बनाने में सफलता प्राप्त की। उन सैनिको मे निम्न वर्ग के हिन्दू तथा मुसलमान भी थे, जिन्हे उसने मणिपुर म बसने की आज्ञा दी। मुसलमान तभी से मणिपुर के स्थायी निवासी बन गए। इन्हें मैते भाषा में "पाङल" कहा जाता है। ये मणिपुर की दक्षिण मध्य घाटी मे बसे हुए हैं। लिलोङ, मयाङ इम्फाल क्षेत्र मे इनकी जनसख्या अधिक है। जिरिबाम व बराक बेसिन में भी मुस्लिम जनसख्या है। ये लोग सुन्नी हैं। मुस्लिम धर्म के नियमो एव प्रथाओ तथा परम्पराओ का ये कट्टरता के साथ पालन करते हैं। इनमें से अधिकतर कृषि करते हैं और मुर्गी पालन कृषि के साथ साथ इनका मुख्य व्यवसाय है।

मुस्लिम स्त्रियो की वेश भूषा मणिपुरी महिला से कुछ भिन्न है। ये 'फनेक, (तहमद) तो पहनती हैं, पर तु उसके ऊपर कुर्ता पहनती हैं तथा इनाफि (चद्दर) से सिर भी ढकती हैं, किन्तु मणिपुर महिलाए सिर नही ढकती हैं। महाराज

कुमारी लोगो के अतिरिक्त मैते मणिपुर महिलाओ को सिर ढँकते हुए नही देखा है। मुस्लिम पुरूषों की वेश-भूषा भी हिन्दू पुरूषो से भिन्न है। ये लोग कुर्त्ता-पाएजामा पहनते है, सिर पर टोपी भी लगाते हैं तथा दाढी रखते हैं। स्त्रियो मे चांदी के आभूषणो का प्रचलन है, जबकि मणिपुरी मैते महिलाए केवल स्वर्ण आभूषण पहनती हैं। इनकी बस्तियाँ घाटी में हैं और ये घाटी के लोगो जैसे ही घर बनाकर रहते हैं। इनकी बस्तियो मे मैते या जनजातिय लोगो के घर भी मिलते हैं। मणिपुर मे हिन्दू-मुस्लिम-ईसाई प्रेम एव सद्भाव के साथ रहते हैं। सब्जियाँ उगाने व बेचने का धधा प्रमुख रूप से मणिपुरी मुसलमानो के हाथ में है। समय-समय पर ये सिलहट-कछार आदि स्थानों से आकर मणिपुर में बस गए हैं। इन्होने स्थानीय महिलाओ से विवाह किए और मणिपुरी भाषा को मातृभाषा के रूप मे अपना लिया है, किन्तु धार्मिक नियम, ये बराबर "कुरान" के मानते हैं।

अन्य धर्म

जैन धर्मावलम्बी प्रमुख रूप से राजस्थान के हैं किन्तु भारत के अन्य भागो से भी आकर बसे हैं। इम्फाल शहर में पावना बाजार में दिगम्बर जैन मन्दिर बना है। राज्य के प्रमुख व्यापारी जैन ही हैं। इम्फाल मे इनके स्थायी निवास हैं। ये लगभग एक सौ वर्ष से यहाँ रहते हैं।

सिख धर्मावलम्बी भी मणिपुर मे काफी सख्या मे है। इनमें से अधिकतर लोग बर्मा से आकर बसे हैं। वाणिज्य एव व्यापार मे सिखो का वर्चस्व है। इम्फाल एव मोरे आदि स्थानो पर इनके गुरुद्वारे भी बने है।

कुछ सख्या बौद्ध धर्म के मानने वाले लोगो की भी है।

नेपाली आव्रजक

नेपाल के थापा, गुरुंग, लिम्बू, राय समांग, राणा क्षत्रिय और ब्राह्मण जातियो के हिन्दू इम्फाल-दीमापुर मार्ग के आस-पास बसे हुए हैं। इम्फाल-तमिङनोग मार्ग पर भी नेपाली जनसख्या है। यो मणिपुर की घाटी एव पर्वतीय क्षेत्र म ये सभी जगह फैले हुए हैं। उनमें से अधिकतर कृषि कार्य करते हैं, परन्तु कृषि के साथ गाय-भैंस पालते हैं तथा दूध और दूध उत्पादनों का व्यवसाय भी करते हैं। इनकी मातृभाषा नेपाली होते हुए भी उन्होने मणिपुरी भाषा और

स्थानीय भाषाओं को अपना लिया है। नेपाली के साथ ये हिन्दी भाषा भी बोल सकते हैं। दो गांवों में नेपालियों ने हिन्दी हाई स्कूल स्थापित किए हैं, जहां शिक्षा का माध्यम हिन्दी है। स्थानीय अर्द्ध सैनिक बलों में नेपालियों की संख्या काफी है।

मणिपुर घाटी के शहरों व बराक नदी के बेसिन में बंगला देश से आए हुए शरणार्थी बसे हैं। कुछ बंगाली परिवार कई वर्षों से मणिपुर में नौकरी एवं व्यवसाय के लिए आकर बस गए हैं।

सामाजिक रीति-रिवाज

मैते सस्कार "मैते' जन वैष्णव है, इसलिए हिन्दू धर्म ग्रथो मे निर्देशित सोलह सस्कारो का विधान है। अन्य सस्कारों में मणिपुर में कोन-थोक चमपो कपा नामक विधि प्रचलित थी जिसमें मायबी द्वारा पूजा-पाठ किया जाता था। गर्भवती स्त्री को, गर्भधारण करने के पाँचवे महीने में, एक जगह बैठाया जाता था, पति उसके सिर पर एक जलती हुई लकडी तब तक घुमाता था जब तक उसके सिर की छाया उसकी गोद मे न गिरे। उसके बाद मायबी अभिमन्त्रित जल कलश लाकर रखती थी। उसके सामने कलश लाकर घर के मध्य रखती थी उसके सामने पान-सुपारी फल चढ़ाए जाते थे। "लाइ" या पूर्वजो को देवता के रूप मे गर्भवती महिला पाँचवे एव सातवें महीने में पूजती थी। प्रसव के समय प्रसूति के लिए एक अलग झोपडी बनाई जाती थी। प्रसव इस झोपडी में होता था। दाई जिनको मायबी' कहा जाता था, प्रसव के समय बुलाई जाती थी। परम्परागत तरीके के अनुसार प्रसव के समय स्त्री को घुटनो के बल बैठना पडता था। दाई बास के बने चाकू से नाल काटती है। नाल को किसी मिट्टी के बर्तन में बद करके घर के चबूतरे के नीचे गाड दिया जाता है। इस प्रसव-गृह में प्रसूता को छ दिन एकाकी रहना पडता है। सरस्वती (षष्ठी) पूजा छठे दिन सध्या समय सम्पन्न होती है। प्रसूति के माता-पिता के घर से उस समय भोजन लाया जाता है, जो पूरे परिवार के साथ ही प्रसूता को भी खिलाया जाता है। भोजन के साथ बच्चे के लिए उपहार भी लाए जाते हैं। बच्चे के पिता की ओर से दावत का आयोजन किया जाता है। षष्ठी पूजा के दिन ही बच्चे को नहला-कर वह वस्त्र पहनाया जाता है जो प्रसूता ने नहीं छुआ हो। केले के पत्ते के छ टुकडो पर चावल सब्जियाँ, एक पौधा, भूनी हुई ङमू मछली, मिर्च और नमक रखकर मायबी पूजा-पाठ करके बच्चे को भोजन कराने का अभिनय करती है

और मन्त्रोचार किए जाते हैं। घास के बने प्रसूता के बिस्तर को जलाकर नष्ट कर दिया जाता है। उस घर में सिगडी मे अग्नि जलाकर उस कमरे को पवित्र किया जाता है। प्रसव से बारहवें दिन तक प्रसूता को चावल, नमक एव मछली खाने को दी जाती है। उसके बाद उसको स्वास्थ्य वर्द्धक पौष्टिक भोजन दिया जाता है, किन्तु वह इसके बाद भी चार सप्ताह तक भोजन नही बनाती है। षष्ठी पूजा व बारहवें दिन ब्राह्मण पूजा करते हैं घर की सफाई होती है, सारे कपडे धोए जाते हैं पुराने पकाने के मिट्टी के बर्तन नष्ट किए जाते हैं और नए बर्तन काम मे लिए जाते हैं। नामकरण, अन्नप्राशन, कर्ण छेदन, मुडन यज्ञोपवीत आदि सस्कार विवाह से पूर्व सम्पन्न किए जाते हैं। यहाँ एक उल्लेखनीय बात है कि यज्ञोपवीत के पूर्व लडको पर खान-पान सबधी कोई प्रतिबध नही रहता है। नामकरण के सबध मे ज्ञातव्य है कि नाम के पूर्व उपनाम (युमनाक या गोत्र वश का नाम) आता है उसके बाद जन्म पत्री के आधार पर ज्योतिषी द्वारा दिया गया नाम आता है। बगाली और सस्कृत नाम बहुत प्रचलित हैं, साथ ही मैते भाषा के नाम भी रखे जाते हैं। स्त्री-पुरुष के नाम समान भी होते हैं, जैसे तोम्बो, इबोबी इबेमहल, इबेयाइमा आदि। ब्राह्मणों (पुरुष) के नाम के अन्त मे शर्मा लगाया जाता हैं जबकि अन्य सबके नामके अन्त मे सिंह। स्त्रियो के नामो के अन्त म देवी शब्द लगाया जाता है। चाहे वह छोटी बच्ची हो या बूढी, चाहे विवाहित हो या अविवाहित।

यज्ञोपवीत धारण करने के साथ ही तुलसी की माला भी धारण की जाती हैं। कुछ लोग भेख (भेष) धारण करके सन्यासी भी बन जाते हैं, जो आजन्म अविवाहित रहते हैं। ये भषधारी सन्यासी या वैरागी सबसे अलग रहते हैं तथा श्राद्ध आदि धार्मिक कार्यों मे इन्हे विशेष आदर दिया जाता हैं। इन्हें लोग भेंट-पूजा, दक्षिणा देते हैं, जिससे इनकी जीविका चलती है।

जनजातीय लोगो मे जन्म, नामकरण, विवाह एव मृत्यु सस्कार ईसाई धर्म के अनुसार ही किए जाते हैं। किन्तु जन्म के सबध मे एक उल्लेखनीय बात है कि ताखुल जनजाति मे प्रसव के समय पति की उपस्थिति आवश्यक होती है। पत्नी को प्रसव पीडा होने पर उसका आलिगन करती है और पेट पर उसके शरीर का दबाव डलवाती है और प्रसव होने के समय उसके घुटनों को दोनों हाथ से पकडकर घुटनो के बल बैठती है। प्रसव के समय सामान्यत: घुटनों के बल बैठा जाता है।

मैते जाति मे ब्राह्म विवाह के साथ-साथ गधर्व विवाह भी प्रचलित है। समान वश, गोत्र तथा माता के वश आदि मे विवाह करना हिन्दू धार्मिक नियमानुसार ही निषिद्ध है। जो विवाह माता-पिता द्वारा तय किए जाते हैं उनमे लड़के के माता-पिता लड़की के माता-पिता से मिलते हैं। उपहारो का आदान-प्रदान किया जाता है। जन्मपत्री मिलाई जाती हैं, इसको 'हैनाबा' कहते हैं। दूसरा कार्य 'याथडयानवा' कहलाता है जिसमे दोनो पक्षो की स्वीकृति के बाद



मणिपुरी विवाह

एक दूसरे को दडवत प्रणाम किया जाता है। तीसरा कार्य 'वारोइपोत पूबा' कहलाता है जिसमे वर पक्ष के लोग वधू पक्ष के घर जाकर भोजन करते हैं। चौथा है— हैजिडपोत', जिसमे पाच या सात टोकरियो मे फल-फूल और वस्त्र आदि लड़की के घर वर-पक्ष के लोग लेकर जाते हैं। तब वर को विवाह

के लिए आमन्त्रित किया जाता है।

विवाह के दिन निश्चित समय वर दिन के अंतिम प्रहर म वधू के घर बरात के साथ पहुँचता है। उसको धोती, कुर्ता व साफा बांधना अनिवार्य होता है। वधू की माता उसका द्वार पर स्वागत करती है। मडप म ब्राह्मण संकीर्तन करते हैं और वर को मडप में विवाह वेदी, जहाँ ब्राह्मण हवन करते हैं मे जाकर बैठाया जाता है। वधू सिर पर मुकुट धारण किए सजधज कर मणिपुर वेश-भूषा में मडप म आती है। मृदग की ताल पर वह वर के सात फेरे लगाती है तथा प्रत्येक फेरे के पश्चात् वह वर पर फूलो की वर्षा करती है। फेरे केवल कन्या लगाती है, वर बैठा रहता है। फिर वह वर की बगल में बैठती है, एक दूसरे को वर माला पहनाते हैं। दोनो के चादर का गठबधन किया जाता है। यहाँ से वे दोनों रसोईघर म ले जाए जाते हैं, जहाँ एक दूसरे के मुँह म मिठाई देते हैं। उपस्थित लोगों को पान-सुपारी तथा दक्षिणा के रूप मे पैसे वितरित किए जाते हैं, किन्तु भोजन का आयोजन नहीं किया जाता है।

पानी में दो मछली छोडकर भावी जीवन के सबध में शकुन देखे जाते हैं। वधू अकेली डोली में बैठकर बद मजूषा में तथा ढकी हुई टोकरियों मे दहेज की सामग्री के व अंडक साथ वर के घर पहुँचती है। वर बाद में बरात के साथ आता है। बरातियों को वर आमन्त्रित करता है प्रत्येक बराती एक कार (आजकल) स्वय की या भाडे की लेकर बरात मे सम्मिलित होता है। प्रत्येक बराती सफेद कुर्ता धोती पहने होता है तथा कध पर शाल भी सफेद रग की होती है। बसें ट्रकें, जीपें आदि भी बरात के जलूस म रहती हैं। बैंड भी एक ट्रक पर चलता है। वर व उसके परिचित लोगों का वैभव बरात म सम्मिलित गाडियों के आधार पर आका जाता है। कभी-कभी गाडियो का यह जलूस दो-तीन मील लम्बा होता है और धीमी गति से चलता है। ऐसे अवसर पर सडक पर अन्य वाहन रुक जाते हैं।

कुछ अन्य औपचारिकताओ के निर्वाह के बाद विवाह के छठे दिन वधू क घर पर भोजन का आयोजन किया जाता है जिसमे तरह तरह के व्यजन एव मछलियाँ रहती हैं।

मणिपुर 'लोइ' जाति के विवाह में बलि देना व यू' (शराब) पीना सामान्य परम्परा है।

लडकी या लडके विवाह के लिए कोई आयु सबधी प्रतिबध न होते हुए

भी बाल विवाह की प्रथा का अभाव है। सामान्यत मैते एव जनजातीय विवाह वयस्क होने पर ही किए जाते हैं। कुछ मैते किशोर-किशोरी किशोरावस्था में भी विवाह कर लेते हैं।

यह ब्राह्म विवाह की बात है। किन्तु मैते समाज में गधर्व विवाह का प्रचलन भी है। लडका लडकी का अपहरण करता है, किन्तु इसको अपहरण कहना भी उपयुक्त नही, क्योकि लडकी स्वेच्छा से उसके साथ किसी निकट सबधी के यहाँ जाकर गुप्त रूप से रहती है। तब दोनों के माता-पिता मे विवाह की मत्रणा होती है, यदि वे सहमत नही होते तो लडके-लडकी को अपने-अपने घर लौटना पडता है, विवाह सभव नही होता। सहमत होने पर ब्राह्म विवाह की प्रक्रिया का निर्वाह किया जाता है। असहमति की स्थिति मे विवाह विधि सम्पन्न नहीं होती और वे साथ रहने लगते हैं। ऐसे विवाह को राक्षस विवाह की श्रेणी में रखा जा सकता है।

विवाह के पश्चात तलाक भी सभव है। तलाक के बाद या विधवा होने पर स्त्री को पुनर्विवाह का अधिकार है, किन्तु इस स्थिति मे विवाह के विधि-विधान के आयोजन की परम्परा नही है। किन्तु विधवा या तलाकशुदा स्त्री के पुनर्विवाह करने पर उसकी सामाजिक स्थिति पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नही पडता है। ऐसी स्त्रियो को भी सामाजिक सम्मान प्राप्त होता है, जो अन्यो को प्राप्त होता है। हाँ जो लोग गोत्र-वश या निषिद्ध सबधो के नियम का उल्लघन करके विवाह करते हैं उन्हें वश से बहिष्कृत किया जाता है और पुराने समय म तो उन्हें लोइ बस्ती मे जाकर रहना होता था। अपहरण के बाद विवाह न होने पर भी पति-पत्नी के रूप म साथ रहने वालो की सामाजिक प्रतिष्ठा पर कोई प्रभाव नही पडता। यदि उन्होने रक्त सबध, गोत्र या वश सबंधी नियमो का पालन किया है, तो उन्हें समाज मे सम्मान प्राप्त होता है। ब्राह्मण कन्याओ के क्षत्रिय या लोइ जाति के लोगों से विवाह पर प्रतिबध है, जबकि ब्राह्मणो को क्षत्रिय कन्या से विवाह करने की छूट है। मैते विवाह पद्धति हिन्दू धर्म शास्त्रों पर आधारित होते हुए भी कठोर नही है।

मैते समाज मे विवाह को पवित्र बधन माना जाता है। उसमे काम-वासना के स्थान पर आत्मिक एव नैतिक बधन को महत्वपूर्ण माना जाता है। विवाह सबध के बाहर शारीरिक सबधो को घोर अनैतिक एव पाप माना जाता है तथा दडनीय भी।

जनजातियो में सगोत्र विवाह सभव नही है। विवाह से पूर्व लडके-लडकी को मिलने की स्वतत्रता होती है। विवाह पूर्व शारीरिक सबध स्थापित नही किए जाते हैं। विवाह अक्सर प्रेम के आधार पर होता हैं और माता-पिता के द्वारा भी किए जाते हैं। वधू मूल्य की परम्परा भी प्रचलित है। जो मिथुन, सूअर, नकद रूपए आदि के रूप में दिया जाता है। विवाह सबध की बातचीत तय करने के लिए किसी बूढी स्त्री को माध्यम बनाया जाता है। निश्चित दिन विवाह का उत्सव होता है जिसमें कुत्ते, बिल्ली, सूअर, मुर्गे आदि काटे जाते हैं, चावल की शराब पी जाती है। नव दम्पति हेतु लडके के माता-पिता एव दल के लोग नया घर बना देते हैं। टोकरी, बास का सामान, मिर्च, तम्बाकू, नमक शालें आदि भेंट मे दी जाती हैं, जिनके साथ वह अपने नए घर में आती हैं। बाल विवाह की प्रथा जनजातियो मे अनजान प्रथा है विवाह के बाद पहले महीने मे घर में शारीरिक सबध स्थापित करना वर्जित है।

तलाक की प्रथा जनजातियो में अपवाद स्वरूप ही देखी जा सकती है। विधवा व तलाक-शुदा महिला को पुनर्विवाह का अधिकार है।

मृत्यु सस्कार

मेते जाति में अतिम और महत्वपूर्ण सस्कार है मृत्यु सस्कार। जब किसी व्यक्ति की मृत्यु के लक्षण दिखाई देते हैं, तो एक वैद्य बुलाया जाता है। वैद्य की उपस्थिति न केवल दवा के लिए होती है किन्तु साथ ही अन्य अतिम क्रियाओं के लिए आवश्यक मानी जाती है। मत्र जाप किया जाता है, माथे पर तिलक लगाया जाता है, कोपीन धारण कराते हैं, एक भिक्षा पात्र छतरी उसके पास रखी जाती है, नामावली वस्त्र (जिस पर कृष्ण के नाम लिखे होते हैं), उसके सिर पर डाला जाता हैं। मुख में गगाजल या स्थानीय देवता के चरणो को धोने के लिए काम लिया हुआ जल डाला जाता है। रसपचाध्यायी का पाठ किया जाता है। मरने से पूर्व तुलसी चौरे के पास एक झोंपडी बनाई जाती है, उसमें ले जाकर उसको रखा जाता है। सकीर्तन एव मत्र पाठ चलता है। जब लोग रोकर चुप हो जाते हैं। तो एक लडकी की सदूक मे लाश को रखकर चार व्यक्ति उठाकर चिता स्थल ले जाते हैं, जहाँ साथ में स्त्री-पुरुष भी जाते हैं। वहाँ मृदग व झाल पर लाश को चिता पर रखने के बाद कीर्तन होता है। मृत व्यक्ति का कोई निकट सबधी जल से भरा घडा लेकर चिता की सात बार परिक्रमा करता

है। उपस्थित लोग फिर रोते हैं, चिता और संकीर्तन दल को पुन: प्रणाम करते हैं, तब चिता में आग लगाई जाती है। घर लौटने से पूर्व लोग स्नान करते हैं और घर में घुसने से पूर्व अग्नि को छूना आवश्यक होता है। छठे दिन अस्थि संचय संस्कार संपन्न किया जाता है। भागवत पुराण का निरन्तर पाठ चलता है। पहले दिन सभी वयस्क लोग व्रत रखते हैं, बच्चों को बिना नमक-मिर्च का भोजन दिया जाता है। श्राद्ध के अंतिम दिन तक पिंडदान किया जाता है। धार्मिक ग्रंथों का पाठ चलता है। घर के लोग बिना नमक-मिर्च का सात्विक भोजन करते हैं। भेखधारी का चौदहवें दिन तथा अन्य का श्राद्ध कर्म तेरहवें दिन किया जाता है। अविवाहित कन्या तथा युवकों का सातवें दिन श्राद्ध किया जाता है। गाँव के मंदिर या एक विशेष झोंपड़ी मंडप बनाकर घर में श्राद्ध कर्म किया जाता है। मरने के दिन से घर को धोया साफ किया जाता है, मिट्टी के बर्तन फेंक दिए जाते हैं, जबकि अन्य को साफ किया जाता है। श्राद्ध के दिन भी घर का शुद्धिकरण किया जाता है। श्राद्ध दिन के समय होता है। एक ब्राह्मण दल संकीर्तन करता है तो दूसरा खाद्य पदार्थ बनाता है। पूजा-कीर्तन समाप्त होने पर आयु वरीयता क्रम में बैठकर लोग भोजन करते हैं। ब्राह्मण भोज होता है अन्य लोगों को भी बुलाया जाता है। दूसरे दिन "दिवस" होता है जिसमें ब्राह्मणों के साथ परिवार के सदस्य बैठकर भोजन करते हैं। जिसमें मछली आवश्यक होती है। यहाँ ब्राह्मण भी मछली खाते हैं। जो लोग संपन्न हैं वे पुरी, वृन्दावन, नवद्वीप, गंगाजी में अस्थि प्रवाह हेतु जाते हैं। कुछ लोग किसी के साथ भी भेज देते हैं तो कुछ लोग स्थानीय नदियों में अस्थि प्रवाह करते हैं।

जनजातीय

जन-जातियों में अब ईसाई धर्म के अनुसार अंतिम संस्कार सम्पन्न होता है। जो लोग ईसाई नहीं बने हैं उनमें भी शव को दफनाने की प्रथा है। मृत लोगों की स्मृति में बड़े-बड़े पत्थर लगाना व उनकी पूजा का विधान भी जन-जातियों में पाया जाता है।

मायबा मायबी

देवताओं की आत्मा का मनुष्य के शरीर पर आना और भविष्य वाणी

करना, ससार में बहुत प्रचलित आदिमकालीन विश्वास है। मणिपुर इसका अपवाद नही हैं। जिस पुरुष पर आत्मा आती है, उसको मायबा और जिस स्त्री पर आती है, उसको मायवी कहते हैं, किन्तु जो पुरुष मायबी वस्त्र धारण करते हैं, उन्हें भी मायवी कहा जाता है। जिस समय इन पर आत्मा आती है ये समाधिस्थ हो जाते हैं और इनके मुख से स्पष्ट अस्पष्ट अर्थपूर्ण, अर्थहीन शब्द निकलते हैं, जिनको सुनकर लोग उनका अर्थ लगाते हैं। वास्तव में उन्हे भविष्य वाणी माना जाता है। रोग, बाढ, अकाल महामारी आदि ईश्वरीय विपदाओ के सबध में की गई भविष्य वाणी सत्य होती है।

मायबी से लोग व्यक्तिगत भविष्य भी पूछते हैं, जिनका ये लोग उत्तर देते हैं। ऐसे प्रश्नो के उत्तर देने से पूर्व पूजा-पाठ किया जाता है तथा विशेष मत्रो का जाप भी। उसके बाद एक डिब्बे में रखे चादी के सिक्को को भूमि पर फेंक कर, उनको देखकर मायबी भविष्य वाणी करती है। व्यक्तिगत प्रश्नो के उत्तर देती है। खोई हुई वस्तु का पता बताना, चोरी गई वस्तु के छिपाने का स्थान बताना या चोर बता देना जैसे कार्य मायवी द्वारा किए जाते हैं।

जिस स्त्री पुरुष पर देवात्मा आती है, वह नित्य-प्रति पूजा-पाठ करते हैं। विशेष मत्रों का जाप करते हैं तथा उन्हें सिद्ध कहते हैं। ये ब्रह्मचारी भी होते हैं और गृहस्थी भी। दोनो ही स्थिति में इन्हे कुछ विधि निषेधों का पालन करना होता है। सफेद वस्त्र पहनते हैं। इनका जीवन सन्यासी जैसा नियम सयम द्वारा नियन्त्रित रहता है। लाइहराओबा नृत्य में मायबी प्रमुख नर्तक की भूमिका निभाते हैं।

अन्य पूजा-पाठ आदि की प्रथा, परम्पराओ का त्यौहार-पर्व शीर्षक के अन्तर्गत उल्लेख हुआ है। मायबी वास्तव में मैते समाज के आदिम धर्म की एक प्रमुख सस्था है जो अज्ञातकाल से विभिन्न धार्मिक सप्रदायों तथा आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी जीवित है। रोग-शोक, विपदा में मायबी सस्था पर लोगों का अटूट विश्वास है। इनके द्वारा अभिमन्त्रित गडे तावीज डाक्टरो और विज्ञान के प्रोफेसरों की भुजा या गले में भी बंधे देखे जा सकते हैं। इनकी भविष्य वाणियो की सत्यता के और चोरी गए या खोए सामान को बताने की अनेक घटनाए सुनी और देखी जाती हैं। इसलिए लोक-विश्वास होना स्वाभाविक है।

रहन-सहन तथा वेश-भूषा

मनुष्य का निवास भौगोलिक परिस्थितियो पर निर्भर करता है। वह उपलब्ध सामग्री से आवश्यकतानुसार घर बनाता है। मणिपुर की प्रकृति ने दो भागो में विभक्त कर रखा है, अत पर्वतीय क्षेत्र के निवास घाटी मे बसने वाले लोगो से भिन्न हैं।

पर्वतीय जन पर्वत शिखरों या ढालो पर मकान बनाते हैं। इन क्षेत्रों में जनसख्या छितरी हुई है। 100 से 200 जनसख्या वाले गाँवो की सख्या दो तिहाई से भी अधिक है। घर बनाने के लिए लकडी, घास, पते, सरकडे, कच्ची मिट्टी की ईंटे व बांस का प्रयोग किया जाता है। घर केवल एक मजिल के होते हैं, अपवाद स्वरूप कहीं दो मजिले घर भी मिल सकते हैं। घरो पर 50^0 से 60^0 कोण के ढलान वाली छत बनाई जाती है। अक्सर छत घास-फूस की होती है, कुछ घरो पर टिन भी है, किन्तु वे भी ढालवा ही हैं। फर्श लकडी या बांस से बनाए जाते हैं और सामान्यत यह भूमि से ऊचे होते हैं। घर से कुछ ही दूरी पर धान का भडार गृह होता है। घरों मे धान नहीं रखा जाता न किसी घर मे दरवाजे पर ताला लगाया जाता है। गाँव के मुखिया को छोड-कर एक ही कमरे के घर होते हैं। गाव बूढे के घर लकडी के बने होते हैं, जिनपर थोडी नक्काशी भी देखी जा सकती है। दीवारो पर कुछ चित्रकारी की जाती है। विभिन्न पशुओ के सिर आदि टागे जाते हैं। कुछ वर्षो पूर्व नर मुड भी देखे जा सकते थे। क्वारे लडके लडकियो के लिए हर गाव मे अलग-अलग सामूहिक घर बनाए जाते थे, जो लम्बे और बडे कमरे होते थे। इन्हे मोरुड कहा जाता था। रहने के घरों में घर के बीचो-बीच आग जलाने का स्थान होता है, जिस पर एक तिपाई पर चावल का बर्तन रखा जाता है। आग के ऊपर रस्सो से बधा मास

लटकता रहता है, जो अग्नि के ताप से सिकता रहता है। यहीं लाल मिर्च और नमक रखा रहता है। एक थाली होती है, जिसमें घर के लोग अक्सर साथ बैठकर भोजन करते हैं। रात्रि के समय उसी आग के चारों ओर चटाई बिछाकर सोते हैं। बिस्तर में कम्बल होना वैभव की निशानी मानी जाती है। अग्निताप एवं शरीर की गर्मी ही बिस्तर का काम करते हैं। जमीन पर बिछाने के लिए सपन्न लोग बोरे में घास भरकर गद्दा बनाते हैं। आवागमन के साधनों के अभाव में अधिक चीजें वहाँ तक ले जाना दुष्कर है। अधिकतर गाँवों में सामान सिरपर रखकर ले जाना होता है। एक चावल लेने का लकड़ी का बड़ा चम्मच, लकड़ी के या एनेमल के एक दो कटोरे, पीठ पर ढोई जाने वाली बेंत की टोकरी, पानी लाने के लिए बांस के टुकड़े, दाव (कुल्हाड़ी के स्थान पर काम आने वाला औजार), भाला, कटार, एक ओखली-मूसल जिसमें धान कूटा जाता है और एक पानी पीने का मग और कपड़े बुनने की सामग्री, टोकरी और कृषि के औजारों के अतिरिक्त घरों में कोई सामग्री नहीं होती है। पलंग या खाट भी कम ही देखी जाती है। इस प्रकार पर्वतीय घर वातावरण के अनुसार बने हैं और उनमें अनिवार्य दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं से अधिक कुछ नहीं मिलता है।

घाटी में जनसंख्या पर्वतीय प्रदेश के ठीक विपरीत पद्धति में पाई जाती है। गाँवों में एक ही स्थान पर घनत्व अधिक मिलता है। घाटी के गाँवों में 200 से 500 की जनसंख्या पाई जाती है। समतल मैदान में नदियों और झीलों के किनारे, तथा सड़क के समानान्तर समतल मैदान में गाँव बसे हैं प्रत्येक गाँव के आस-पास हरे-भरे खेत होते हैं और गाँव का हर घर बाँस के झुरमुट से घिरा रहता है। दूर से देखने पर ये गाँव बसवारी लगते हैं। जिन गाँवों के पास नदी नहीं होती है, वे अक्सर पोखरी को केन्द्र बनाकर बसते हैं। घर पूर्व से पश्चिम दिशा में या उत्तर से दक्षिण दिशा में फैले रहते हैं। प्रत्येक घर का मुख्य द्वार पूर्व की ओर होता है। धार्मिक एवं भौगोलिक कारणों से दक्षिण या पश्चिम दिशा की ओर कभी मुख्य द्वार नहीं रखा जाता है।

प्रत्येक घर लगभग एक एकड़ या उससे भी अधिक भूमि पर बनाया जाता है। पूर्व दिशा में एक मंडप या बरामदा बना होता है, जिसके साथ कमरे नहीं होते। इसको 'शघोई' कहा जाता है और दिन के समय घर के सदस्य इसी में बैठते हैं। स्त्रियों के करघे हेतु एक कार्यशाला प्रत्येक घर में होती है। शघोई में

भजन-कीर्तन नृत्य होते हैं। रहने के कमरों और शयोई के बीच "शुमाङ" (आँगन) होता है। शुमाङ के बीच तुलसी चौरा। घर के पृष्ठ भाग में या बगल में रसोई होती है और घर के चारों ओर तरकारी और फूलों और फलों के पौधे रहते हैं। घर के पीछे अंतिम भाग में शौचालय। लगभग प्रत्येक घर में एक छोटी बड़ी पोखरी रहती है, जो जल स्रोत होती है। घर कच्चे ही होते हैं और इनके निर्माण में वही सामग्री काम में ली जाती है जो पर्वतीय घरों में, किन्तु गाँवों, कस्बों या नगरों में दो मंजिल के मकान मिलना आश्चर्य की बात नहीं है। छत घास-फूस या टिन की हो सकती है किन्तु ढालवाँ अवश्य होगी। फर्श अक्सर धार्मिक कारणों से कच्चे होते हैं। जिनको प्रतिदिन मिट्टी व गोबर से लीपा जाता है। शुमाङ, शयोई या घर के आँगन तथा पीतल के बर्तन शीशे की तरह चमकते हैं। स्वच्छता एवं सुरुचि का संयोग अनुकरणीय है। बगीचे के पौधों फूलों के चयन और चमचमाते आँगन और बर्तन घर को अलौकिक स्वरूप प्रदान करते हैं। घाटी में बसने वाले लोग अधिकतर वैष्णव हैं, अतः प्रत्येक घर में मंदिर और मंडप आवश्यक है। हर घर के चारों ओर बाँसों की या झाड़ियों की बाड़ होती है। मध्यकाल में वैष्णव कवियों ने जिन कुंजगलियों का वर्णन किया है, ठीक वैसी ही कुंज गलियाँ हैं ये, जिनमें कोयल-पपीहे का स्वर गूँजता रहता है। सूर्य की किरणें बाँसों के घने झुरमुट से छनकर घरों के आँगन में तोता-पंखी रंग बिखराती हैं। साफ-स्वच्छ, फूलों-हरियाली से घिरा शांत घर किस स्वर्ग से कम है।

इधर कुछ वर्षों में आर० सी० सी० के पक्के बहुमंजिले घर भी बन गए हैं। प्रत्येक घर में अलमारी, मेज, कुर्सी पलंग आदि सामग्री की कलात्मक बनावट दर्शनीय है। बिस्तरों की साफ-सफाई व सज्जा तथा पलंग की कारीगरी देखकर मन प्रसन्न हो जाता है। प्रातःकाल बिस्तर छोड़ने के बाद रजाई-कम्बल अलमारी या भंडार गृह में रख दिए जाते हैं। केवल गद्दों पर स्वच्छ चादर बिछी मिलती है और तकिये। सैनिक अनुशासन से भी मणिपुरी घरों में स्वच्छता संबंधी अनुशासन कठोर है।

स्वच्छता

मणिपुर के मैतै समाज की स्वच्छता एवं शालीनता अपूर्व है। घरों-बर्तनों के विषय में निवास शीर्षक में बता दिया गया है। व्यक्तिगत स्वच्छता की

चर्चा की जाए। मैते लोग अबाल-वृद्ध प्रात:काल सूर्योदय से पूर्व बिस्तर छोड देते हैं। चारपाई से उतरने से पूर्व राम-कृष्ण-हरि, सनामही, पाखवा आदि का नाम जाप कर और नमन कर तथा पृथ्वी को छूकर प्रणाम करके उस पर पाँव रखते हैं। दैनंदिन कार्यों से निवृत होकर मिट्टी से हाथ धोते है, दाँतुन करते हैं तब स्नान करके चंदन-तिलक व छापे लगाकर पूजा-पाठ किया जाता है। स्त्री-पुरुष पूजा-पाठ के समय रेशमी या मूँगे के वस्त्र धारण करते हैं। स्त्रियाँ पूरे घर को साफ करके लीपती हैं और सारे बर्तन राख व मिट्टी से मलकर साफ करती हैं। तब वे अन्य कार्य करती हैं। तुलसी चौरे पर तथा देवी-देवताओं को पुष्पांजलि दी जाती है। इन सब कार्यों से पूर्व खाना-पीना वर्जित है। सूर्यास्त के बाद पुनः सध्या-आरती के बाद ही रात का भोजन किया जाता है। तुलसी चौरे पर दीप जलाना भी नित्य-नियम है। सोने से पूर्व भी ईश्वर का नाम लेते है। स्नान के पश्चात प्रतिदिन स्वच्छ धुले वस्त्र पहनना भी अनिवार्य है। स्त्रियां नहा-धोकर ही रसोई मे प्रवेश करती हैं तथा रजस्वला होने पर रसोई में नही जाती। शौच जाने के बाद मे स्नान करना व वस्त्र बदलना भी अनिवार्य है।

स्त्री-पुरुष व बालकों के दाँत मोती से चमकदार होते हैं। शरीर व वस्त्रों की सफाई देखते ही बनती है। स्त्रियो के बाल विशेष पत्तियो तथा चावल के पानी से धोने के कारण रेशम से मुलायम व चमकदार होते हैं। मणिपुरी महिलाओ के बाल घुटने के नीचे तक लम्बे होना आम बात है। कुछ स्त्रियों के बाल एडी तक लम्बे होते हैं। सडक पर खडे हो जाइये आप एक भी व्यक्ति ऐसा नही पाएगे जो मेला हो या मैले वस्त्र पहने हो। जूते तक पालिश से चमकते हैं। सवारी चाहे साईकिल हो या कार चमकती हुई मिलेगी। यहाँ विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि यहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामर्थ्यानुसार सवारी अवश्य रखता है और प्रत्येक घर में जितने सदस्य स्त्री-पुरुष बच्चे-बच्ची सभी की अलग-अलग सवारी होती है। वाहन प्रियता के साथ चलाने मे दक्षता इनकी विशेषता है।

विनम्रता

यों तो वैष्णव विनम्रता विख्यात हैं ही किन्तु मणिपुर के जन-जीवन मे उसका अनूठा रूप देखा जाता है। यहाँ किसी को ऊँची आवाज में बोलते या चीखते-चिल्लाते नही सुन सकते। धीमी आवाज में प्रेम से बोलना, बोलते

समय मुंह पर हाथ रखना, गुरुजनों को 'खुरमजरी' (दण्डवत प्रणाम) करना, सभा या व्यक्तियों के बीच से गुजरना हो, थोड़ा झुककर दाहिने हाथ को भूमि की तरह फैलाकर रास्ता मांगते हुए गुजरना, गालों या अपशब्द का प्रयोग न करना—यहाँ तक कि विवाद हो जाने, कुश्ती मारपीट होने पर लहू-लुहान होने पर भी न चिल्लाते हैं, न अपशब्द बोलते हैं। विनम्रता और शिष्टाचार के इन नियमों का अत्यन्त कठोरता से पालन किया जाता है। निन्दा करना, अपवाद फैलाना और अभिमान का भी मैते जीवन में सर्वथा अभाव है। सभी बंधुत्व के भाव में आबद्ध हैं। अनुशासन, समता, विनम्रता, शिष्टाचार और स्वच्छता सम्भवतः मणिपुर को वैष्णव-धर्म की अनुपम देन है।

समाजवादी समाज

मणिपुरी समाज पूर्ण समाजवादी सिद्धांतों द्वारा नियन्त्रित है। कोई ऊँच-नीच की भावना यहाँ नहीं पाई जाती और न ही कोई वर्ग भेद है। युगों से यह वर्ग-विहीन समाज रहा है। आयु के आधार पर सम्मान दिया जाता है और पद या आर्थिक अवस्था के कारण न सम्मान किया जाता है और न अनादर। राजा और गुरु सदैव वदनीय और पूजनीय रहे, किन्तु राजकुमारियाँ महलों में कपड़ा बुनती थीं और झीलों में मछलियाँ पकड़ा करती थीं। स्वावलम्बन की भावना के कारण कोई किसी के श्रम का शोषण नहीं करता था और न आज करता है। राजाओं को छोड़कर सेवक प्रथा का इस समाज में आज भी अभाव है। यदि आवश्यकता के कारण अनिवार्य हो तो किसी को भी घर में सहायक के रूप में रखा जा सकता है किन्तु नौकर की भाँति नहीं, परिवार के सदस्य के रूप में ही। वार्तालाप या व्यवहार में उसके साथ समानता का व्यवहार किया जाता है।

वेश-भूषा

कई स्थानों पर "मैते" पुरुष वेश-भूषा का उल्लेख किया गया है। पुरुष अक्सर धोती-कुर्ता पहनते हैं विशिष्ट अवसरों पर वे साफा भी बाँधते हैं। मैते स्त्रियों की वेश-भूषा में कमर में "फनेक" (तहमद) बाँधा जाता है, तो कंधों पर चादर डाली जाती है जिसको "इनाफि" कहा जाता है। पुराने समय में वक्षस्थल को भी फनेक से ही ढका जाता था, किन्तु इधर ब्लाऊज का प्रचलन हो गया है।

जनजातीय लोगो मे पुरुष कमर म लंगोटनुमा वस्त्र बाँधते हैं, ऊपर एक शाल या कम्बल ओढते हैं। महिलाओ की वेश-भूषा मैतै महिला से अधिक भिन्न नही होती। कमर मे तहमद, ऊपर शाल और ब्लाउज का भी प्रचलन है।

यह परम्परागत वेश-भूषा है, किन्तु पाश्चात्य प्रभाव के कारण मैतै एव जनजातीय स्त्री-पुरुष की वेश भूषा मे परिवर्तन हुआ है। "मैतै" महिलाओ में कभी-कभी साडी पहनने वाली महिलाएँ भी दिखाई देती हैं, तो युवा मैतै व जनजातीय लड़कियाँ पेंट बुशर्ट भी पहनती हैं।

नेपाली पुरुष कुर्ता-कमीज व चुस्त पजामा और सिर पर नेपाली टोपी पहनते हैं। नेपाली महिलाओ ने मणिपुरी महिलाओ की वेशभूषा अपना ली है, किन्तु वे साडी का प्रयोग अधिक करती हैं। अन्य प्रान्तो के लोग सामान्यत. अपनी ही पारम्परिक वेशभूषा पहनते हैं।

आए दिन उत्सव होते हैं और इन उत्सवो मे भाग लेने के लिए सबको एक वेश-भूषा पहनना अनिवार्य है। पुरुष सफेद रग का धोती-कुर्ता पहनते हैं और कधे पर एक सफेद शाल रखते हैं, किन्तु कुछ विशिष्ट अवसरो पर साफा बाँधना पडता है। स्त्रियाँ ऐसे उत्सवो मे हल्के गेरूआ रग का "फनेक" (तहमद) बाँधती हैं और सफेद रग का ब्लाउज व चादर ओढकर भाग लेती हैं। समान वेश-भूषा पहनकर पूरा मैते समाज त्यौहारो-पर्वों-उत्सवों मे सम्मिलित होता है। वेश-भूषा की एकरूपता वर्गहीन समाज की प्रतीक है।

प्रत्येक उत्सव एव पर्व-त्यौहार आदि पर सामूहिक भोज का आयोजन किया जाता है। भोज में बिना किसी भेदभाव के एक पगत म बैठकर भोजन किया जाता है। पगत में किसी से भेदभाव नही किया जाता है। इससे भी मैते समाज की वर्ग-विहीनता प्रकट होती है।

यही स्थिति पर्वतीय जन-जातियो की है। पुरुष और स्त्रियाँ बिना किसी भेदभाव के एक प्रकार के वस्त्र पहनते हैं। वहाँ सभी कार्य सामूहिक रूप से किए जाते हैं। कोई मालिक नहीं कोई नौकर नहीं। पुरुष सभी लंगोटनुमा वस्त्र पहनकर ऊपर शाल ओढते हैं। इनकी शालें प्रत्येक जनजाति की भिन्न-भिन्न रगो की होती हैं। स्त्रियाँ फनेक के रूप में भी रगीन शाल बाँधती हैं और

ओढ भी सकती हैं। सप्रति जनजातीय वेश-भूषा मे परिवर्तन हुआ है और पाश्चात्य वेश-भूषा पहनी जाती है। पुरुष और स्त्रियाँ पाश्चात्य वेश में सुसज्जित दिखाई देते हैं, किन्तु प्राचीन वेश-भूषा पहनने वालो की सख्या अधिक है।

उत्सव त्यौहारो के अतिरिक्त मैते महिलाएँ बहुत ही रग-बिरगे आकर्षक वस्त्र पहनती हैं और स्वर्णाभूषण उन्हें विशेष प्रिय हैं। पर्वतीय स्त्री-पुरुष कौडियों, रग बिरगे कांच के मनको से बनी मालाओं से अपना शृगार करते हैं। मैते बालको को हाथो पैरो मे चांदी के छल्ले पहनाए जाते हैं जो बजते हैं। बच्चो के अतिरिक्त चांदी के आभूषणो का मणिपुर में प्रचलन नही है। वास्तव मे मैते हो या जनजातीय समाज इनमे पूँजी पतियों का कोई वर्चस्व नही है। कोई निर्धन भी नही क्योकि सबके पास रहने को घर होते हैं और कृषि भूमि भी। अत कोई किसी पर निर्भर नही। कोई शोषण नही। जो भी कार्य जनजातीय समाज मे होते हैं, वे तो सामूहिक होते हैं।

मणिपुरी समाज में षष्ठी, विवाह एव श्राद्ध के अवसर पर सभी मित्रो एव परिचितो के द्वारा पहले खाद्यान्न आदि के रूप मे और अब नकद भेंट दी जाती है। इससे ऐसे खर्च के अवसरो पर आयोजक को आर्थिक कठिनाई नही होती और न ही ऋण लेने की कोई आवश्यकता होती है। समाजवादी समाज की यह भी अनूठी प्रथा है। बेटी के विवाह मे दहेज मे दी जाने वाली वस्तुए, जनजातियो मे और मैते समाज में, मित्रो, परिचतो या सबधियो द्वारा दी जाती है।

भिखारी हीन भू भाग

मणिपुरी समाज के समाज वादी दृष्टिकोण का प्रमाण यह है कि इस भू भाग में ढूंढने पर भी भिखारी नही मिलता है। अपग-अपाहिज या पागलो को कुछ वर्षों पूर्व तक तो हर बस्ती या मोहल्ले मे एक घर बनाकर दे दिया जाता था तथा उनके भोजन, वस्त्र की व्यवस्था उस बस्ती के लोग किया करते थे, किन्तु दान के भाव से नही अपना कर्तव्य मानकर आदरपूर्वक देते थे। सप्रति सामाजिक परिवर्तनों के कारण प्रत्येक परिवार अपने अपाहिज सदस्य की देखभाल स्वय करता है। अन्य के द्वारा उसको कुछ देना, उसका अन्य से कुछ

लेना वह परिवार अपना अपमान मानता है। इसलिए अपाहिजो को अपने ही घर मे रखा जाता है। उन्हे पूर्ण सामाजिक सुरक्षा प्राप्त है। जन-जातियो मे सामूहिक जीवन पद्धति प्रचलित है। अत. वहाँ भी भिखारी नही मिलते हैं।

भोजन

सम्पूर्ण मणिपुर मे मुख्य भोजन चावल है। गेहूँ और मक्की का उत्पादन होता है, परन्तु खाते नहीं है। पर्वतीय जन मासाहारी हैं जबकि घाटी के लोग केवल मछली खाते है और अपने को निरामिष या शाकाहारी मानते हैं। भोजन में गोभी, आलू, बदगोभी, आदि सब्जियो के साथ सरसो और राई के पत्तो की साग बहुत प्रचलित है। मैतै एक चटनी बनाते हैं जिसको "एराम्बा" कहा जाता है। सूखी मछली, आलू योंकचाव (एक लम्बी फली), बाँस की कोपल का भीतरी भाग आदि विभिन्न वस्तुओ को उबालकर एरोम्बा चटनी बनाई जाती है। इसमें मिर्च की मात्रा बहुत अधिक होती है। भोजन मे विभिन्न प्रकार की दालो और सब्जियो का प्रयोग करना तथा तली हुई मछली व रसदार मछली भी भोजन में अवश्य रहती है। तेल-घी का बहुत कम प्रयोग किया जाता है। दूध और दूध उत्पादन का भी अधिक प्रचलन नही है। मणिपुर मे मोटे या तोंद वाले व्यक्ति बहुत ही कम हैं। भोजन भूमि पर बैठकर किया जाता है। 'मैतै' भोजन में व्यजनो की विविधता रहती है और उत्सवो आदि पर आयोजित भोज या दावत मे व्यजन सख्या 100 से 150 तक भी हो सकती है। दावतो या प्रसाद में खीर बनाई जाती है। कई प्रकार की मछली और उसकी विभिन्न प्रकार की तरकारी विशेष उल्लेखनीय है। विभिन्न धार्मिक पर्व-उत्सवों में बनाए जाने वाले भोजन में मछली नही बनाई जाती है। भोजन के अत में नमक अतिम वस्तु के रूप मे दिया जाता है जिससे लोग हाथ धोते हैं तथा दाँतो को भी रगडते हैं। सामूहिक भोज ब्राह्मण बनाते हैं। परोसते समय एक विशिष्टता का उल्लेख करना आवश्यक है। परोसने वाले के मुँह और नाक को ढकते हुए एक वस्त्र बाँधा जाता है, जिससे छीकने या खाँसने पर भोजन में कुछ गिर न जाए। सामूहिक भोजन केले के पत्ते, पत्तल एव दोनो मे किया जाता है जबकि घरो में पीतल, काँसे और अब स्टील की थाली, कटोरों आदि मे।

पर्वतीय जन का खाना बहुत ही सादा होता है। सेके गए मास का टुकडा नमक और मिर्च आमतौर मे यही भोजन होता है। कभी कभी दाल, सब्जियाँ,

साग भी बनाई जाती है और मांस भी, किन्तु इनमें नमक, मिर्च, हल्दी के अतिरिक्त मसालों का प्रयोग नहीं किया जाता है और सब्जी तरकारी उबली हुई होती है जिसमें अक्सर तेल-घी नहीं मिलाया जाता है। भोज या दावत के अवसर पर मछलियों की भिन्न-भिन्न तरकारी, कई तरह के तले भूने या रसदार मांस आदि बनाए जाते हैं।

यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि पर्वतीय जन जो मिर्च खाते हैं, उसको नागा मिर्च कहा जाता है, यह मैतै मिर्च से कई गुणा तेज होती है। एक बड़े सब्जी के कड़ाह में यदि एक मिर्च डाल दी जाए, तो अन्य प्रान्त के लोग उस सब्जी को मिर्च की अधिकता के कारण खा नहीं सकेंगे, किन्तु नागा लोग एक भोजन में 1-2 मिर्च या उससे भी अधिक खा जाते हैं। पर्वतीय जन भी भोजन भूमि पर बैठकर करते हैं और एक अंडाकार टोकरीनुमा भोजन रखने की वस्तु होती है, उस पर भोजन रखा जाता है। पूरा परिवार एक साथ एक थाली में भोजन करता है।

पेय पदार्थ

मणिपुर में 'मैतै" लोगों के संबंध में अन्यत्र कहा जा चुका है कि वे नशीली वस्तुओं का सेवन नहीं करते। "लोइ" या निम्न जाति के लोग, जिनके विषय में अनुमान है कि ये मोइराङ के मूल निवासी हैं, जिनको कभी निङथोजा वंश के लोगों ने दास बना लिया था और बाद में इनकी बस्तियों में राज्य द्वारा दण्डित तथा समाज द्वारा बहिष्कृत लोगों को भी भेजा जाता था। वे सब लोइ कहलाते हैं। इनकी बस्तियाँ "मैतै" बस्तियों से अलग होती हैं। लोइ जाति के लोग न केवल चावल की बीयर जैसी शराब और तेज अलकोहल युक्त शराब भी बनाते हैं बल्कि उसका सेवन भी करते हैं। जनजातीय लोगों में भी चावल की भाँति-भाँति की नशीली शराब बनाई जाती हैं और पी जाती है। बिना दूध की चाय जिसमें शक्कर भी नहीं डाली जाती है, बहुत प्रचलित चाय [redacted]। खेतों में काम करते समय इस प्रकार की चाय पीने का रिवाज है। चावल की बीयर जो नशा और भोजन का काम देती है, भी पी जाती है। 'मैतै' भाषा में "यू", अतिबा आदि शब्द शराब व बीयर के लिए प्रयुक्त होते हैं। जू, जाम आदि अनेक शब्द अन्य जनजातीय भाषाओं में शराब के लिए प्रयुक्त होते हैं।

खानपान के संबंध में मैतै जाति के लोगो में भी परिवर्तन आया है और शराब के प्रचलन का पता इम्फाल बाजार व कस्बा म शराब (विशेष रूप से विलायती शराब भारत मे बनी) की दुकानो की बढती संख्या से लगता है। प्राचीनकाल से मणिपुर एव जनजातियो मे तम्बाकू पीने का रिवाज रहा है। आजकल लोग बीडी सिगरेट पीते हैं। अस्सी के दशक में यहाँ गांजा, स्मैक, नम्बर फोर आदि देशी-विदेशी नशीले पदार्थों का सेवन बहुत बढ गया है, विशेष रूप से किशोरवस्था के लडके-लडकियो मे। इसमे अपराध दर मे वृद्धि हुई है और हत्या जैसे जघन्य अपराध भी हुए हैं। सरकार इस सामाजिक बुराई से संघर्षरत है।

कहते हैं सभी दिशाओं में देवी-देवताओं एवं प्रेतात्माओं के लिए भोजन रख देते हैं तथा उनसे राजा व प्रजा के मंगल का वरदान माँगते हैं। इसको खरोयखड़बा कहते हैं। वर्ष के अंतिम दिन की रात को राज्य वैद्य एवं उसके लोग हैवोकचीङ पर्वत पर जाकर देवताओं को सुण अर्पित करते हैं। और उनसे राजा-रानी व सामन्तों आदि की भलाई की प्रार्थना करते हैं। मणिपुरी के प्राचीन देवता लाइनिङथौ पाखङबा को भी नए वस्त्र भेंट करने की परम्परा भी है। लाइनिङथौ नोङबा पुमजाओ लाइरेम्मा देवी, लाइनिङ थौ सनामही देवता और सभी देवी देवताओं को नए वस्त्र एवं छत्र चढ़ाए जाते हैं। जल में इमु नामक मछली छोड़कर महाराजा के मंगल की कामना भी की जाती है।

चैराओबा के छः दिन पूर्व से घरों की सफाई की जाती है, नए वस्त्र बर्तन आदि भी क्रय किए जाते हैं। अपने-अपने मंदिरों में चैराओबा के दिन प्रातः काल पूजा पाठ होता है तथा उन्हें नई सब्जियाँ अर्पित की जाती है। नव वर्ष के लिए वर माँगे जाते हैं। परिवार के गुरुजनों को प्रणाम किया जाता है। स्वर्गीय देवी देवताओं को भी प्रणाम किया जाता है तथा नववर्ष हेतु मंगल वरदान माँगे जाते हैं। लोहे से बने चूल्हे (योत्सबी) से कालिख लेकर उसको हल्दी व चावल के साथ मिलाकर घर के चारों ओर फेंक कर प्रेतात्माओं को भगाया जाता है। भोजन बनाकर लाइबाकथाबा अर्थात देवताओं को भोजन देने के लिए घर के मुख्य द्वार के दाहिनी ओर पका हुआ भोजन रख दिया जाता है। प्रार्थनाएँ की जाती हैं तथा आशीर्वाद माँगा जाता है। तब सामूहिक भोज होता। भोज के उपरान्त गुरुजनों को प्रणाम किया जाता है तथा उन्हें वस्त्र एवं नकद रुपये भेंट किए जाते हैं।

चैराओबा के एक दिन पूर्व बाजार से सब्जियाँ खरीदी जाती हैं अतः उस दिन के बाजार को चैराओ कैथेल अर्थात् चैराओबा का बाजार कहा जाता है।

सन्ध्या समय भोजन करने के बाद चैराओचीङ नामक पहाड़ पर सभी लोग चढ़ते हैं। चैराओचीङ इम्फाल में है, अतः दूसरी बस्तियों के लोग अपने अपने पास के पर्वतों पर चढ़ते हैं और वहाँ शिवजी दुर्गा, गणेश आदि के साथ अपने आदिम स्थानीय देवताओं की पूजा करते हैं। पर्वत से उतर कर आने के पश्चात रात में थाबल चोङबा अर्थात् चाँदनी रात का नृत्य किया जाता है। जिसमें प्रत्येक स्त्री-पुरुष भाग लेते हैं।

इस प्रकार नव वर्ष का बहुत ही धूमधाम से स्वागत किया जाता है। चैरोबा के बाद पाँच दिन तक विभिन्न खेल जैसे काङ-सा नबा युबी लाक्पी सगोल काङ जै आदि स्थानीय खेल खेले जाते थे जिसे सिलहेनबा कहा जाता था किन्तु अब सिल हेनबा केवल एक दिन के लिए होता है।

लाइ हराओबा

यह मणिपुर का प्रमुख जातीय और स्थानीय त्योहार है। मणिपुर की घाटी में बसने वाले मैतै लोग इस त्योहार को बहुत धूमधाम से मनाते हैं। इस त्योहार का प्रारम्भ चैत्र मास से होता है और फाल्गुन मास तक चलता है। किन्तु आषाढ़ सावन अगहन और पौष महीनों में नहीं मनाया जाता। आठ महीने तक मनाया जाने वाला यह संसार का सबसे लम्बा त्योहार है। इसके अनेक भेद भी किए जाते हैं। इस त्योहार में स्थान देवता वंश और मनाने के ढंग में और समय में अन्तर होने के कारण ही इसके विभिन्न भेद किए जाते हैं। इस त्योहार का प्रचलन मणिपुर में ई पू चतुर्थ शताब्दी से माना जाता है। वास्तव में यह अत्यन्त प्राचीन त्योहार है जो अज्ञातकाल से मनाया जा रहा है। इसके शाब्दिक अर्थ का तात्पर्य है— लाइ का अर्थ है देवता और हैराओबा एक त्योहार होने के साथ लोकनृत्य लोक नाट्य अनुष्ठान और उत्सव भी है। इसमें अनेक तत्वों का समावेश हो गया है। लाइ-हराओबा को लाइ हराओबा जगोइ (नृत्य) भी कहा जाता है। इसके उद्भव से जुड़ी एक लोक कथा प्रचलित है। नौ देवता जिन्हें लाइपूङ थौ कहा जाता है का स्वर्ग से पृथ्वी पर भेजा गया था। सात लाइनुरा (देवियाँ) जो पानी पर नृत्य कर रही थी ने पृथ्वी को पकड़ा और उसको पानी में फेंक दिया। इस प्रकार सृष्टि हुई। पृथ्वी के निर्माण के बाद अतिया गुरु सिदबा (शिवजी) और देवी लैमरेन (पार्वती) एक घाटी की खोज करते हुए एक पर्वतों से घिरे स्थान पर पहुँचे किन्तु उन्होंने देखा कि घाटी जल से परिपूर्ण है अतः गुरु सिदबा ने अपने त्रिशूल से पहाड़ों में तीन छेद किये जिससे घाटी में भरा हुआ जल बह निकला और भूमि निकल आई।

इस भूमि पर गुरु सिदबा और देवी लैमरेन ने सात लाइनुरा अर्थात देवियों और उनके सात लाइपुङथौ अर्थात देवताओं के साथ नृत्य किया था। यह देवताओं की प्रसन्नता का नृत्य था। प्रथम बार देवताओं ने हर्षोन्माद में यह नृत्य किया किन्तु उसके बाद लाइ हराओबा जगोइ प्रतिवर्ष एक उत्सव

या त्योहार के रूप मे मनाया जाता है और इसका अर्थ देवताओं को प्रसन्न करने हेतु किया जाने वाला नृत्य हो गया है इस प्रकार इसके मूल अर्थ में परिवर्तन हुआ है। यह मणिपुर की सांस्कृतिक धरोहर और प्रतिनिधि नृत्य है।

वास्तव में लाइ हराओबा एक मिश्रित नृत्य है, जिसमें विभिन्न घटनाओ का सम्मिश्रण हो गया है। इसको पूर्वजो से सम्बन्धित अनुष्ठान भी कहा जा सकता है, क्योंकि पूर्वजो को सम्मान देने के लिए इसका आयोजन किया जाता है। उदाहरणार्थ पाखङ्बा, थॉङ्जिंग आदि देवताओ की पूजा एव प्रसन्नता के लिए यह उत्सव मनाया जाता है। उम लाइ या वन-देवी देवताओ की प्रसन्नता या येक (वश), सागें लाइ (वश-देवी देवता) के लिए भी इसका आयोजन होता है। तात्पर्य यह है कि इसमें पौराणिक देवताओ के साथ वशो के आदि पुरुषो को भी देवता मानकर यह अनुष्ठान उत्सव मनाया जाता है।

"लाइ-हराओबा" नृत्य अनुष्ठान में मुख्य भूमिका मैतै पुजारी (माइबा), और पुजारिन (माइबी) की होती है, इन्हें स्त्री-पुरुष के भेद को भुलाकर केवल माइबी भी कहा जाता है। अनुष्ठान का प्रारभ एक जलूस से होता है जिसके आगे माइबी नृत्य होता है और उनके पीछे बस्ती के लोग चलते हैं और किसी तालाव या नदी के किनारे जाकर रुकते हैं। माइबी जल मे सोने या चाँदी का चूर्ण डालते हैं और फूल भी। इसके पीछे मान्यता यह है कि वे देवी या देवता की आत्मा को बुलाते हैं। इसके बाद माइबी पर वह आत्मा आती है और माइबी के मुख से स्पष्ट-अस्पष्ट शब्द निकलते हैं, इन शब्दों का अर्थ निकलना जरूरी नहीं है। जिस समय माइबी इस अचेतन अवस्था मे होती है, भविष्य वाणी भी करती है। इस नृत्याभिनय में ब्रह्माण्ड रचना का भाव रहता है। अगुलियो में विशेष घास (जिसे लाइ थ्रे कहते हैं) लेकर माइबी सृष्टि प्रक्रिया को प्रकट करती है। उस समय आँखो और पाँवो की गति भी प्रतीकात्मक होती है। नोङपोक निङ्थौ और पान्थोइबी (शिव-पार्वती) का अभिनय भी किया जाता है, जिसमें प्रतीकात्मक ढग से नारी पुरुष मिलन, गर्भ धारण, जन्म आदि की अभिव्यक्ति होती है। कपास बोने चुनने से लेकर वस्त्र बनाने तक की क्रिया प्रकट की जाती है। उसके पश्चात मछली पकडने, कृषि तथा घर बनाने आदि का भी प्रतीकात्मक अभिनय-नृत्य किया जाता है। नृत्य के समय पाँवों की गति मन्द होती है और इसमे लय-ताल आदि की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जाता है। नृत्य मे भाग लेन वाले नर्तक बच्चे से लेकर बूढे तक होते हैं, जो

एक वृत्त या अर्द्ध वृत्त बना लेते हैं।

"लाइ-हराओबा" सृष्टि काल से प्रचलित नृत्य है जिसमें सृष्टि की सम्पूर्ण प्रक्रिया प्रतीकात्मक ढग से दिखाई जाती हैं। यह नृत्य मणिपुरी सस्कृति का सच्चा प्रतिनिधि है। प्रोफेसर एलाङ्बम नीलकान्त सिंह ने इसको मैतै जाति का वेद और पुराण कहा है। वास्तव मे है भी। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि प्रत्येक नर्तक के अग विशेष वस्त्रो से ढके रहते हैं, जिससे किसी दर्शक या नर्तक के मन मे वासनात्मक भावना जागृत न हो। पुरुष धोती और साफा बाँधे तथा कुर्ता पहने हुए होते हैं जबकि स्त्रियाँ "इनफि" नामक पारदर्शक चादर ओढती है तथा कमर मे फनेक बाँधती है। विवाहित स्त्रियाँ सिर ढकती है किन्तु अविवाहित लडकियाँ/महिलाएँ एक प्रकार का मुकुट धारण करती हैं। इस नृत्य मे लास्य मुद्रा मे स्त्रियाँ नाचती हैं जबकि पुरुष ताण्डव मे। इस नृत्य अनुष्ठान के अन्त मे विभिन्न स्थानीय खेल खेलने की परम्परा भी है। लाइहराओबा के अन्तिम दिन "सरोय-खाङबा" नामक पूजा की जाती है। अर्द्धरात्रि के पश्चात गाँव की स्त्रियाँ सिर पर टोकरी में चावल फल, फूल और सब्जियाँ आदि लेकर माइबी के साथ चौराहे पर जाते है, जो गाँव से दूर होता है। माइबी वहाँ पूजा करती है और यह सारी खाद्य सामग्री भूत प्रेतों को अर्पित करके ये लोग लौट आते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि इस पूजा के परिणाम स्वरूप भूत-प्रेत नही सतायेंगे।

रामनवमी

श्री एन० इबोबी सिंह के अनुसार महाराजा गरीब निवाज (1709 48 ई०) ने शांतिदास महन्त से रामानन्दी धर्म की दीक्षा ली और राम जी प्रभु की मूर्ति की स्थापना की थी (हि दू पर्व दिन-1981 पृ० 196)। इससे अनुमान किया जाता है कि उसी समय से मणिपुर मे रामनवमी का त्योहार मनाया जाने लगा होगा। पुराणो के आधार पर चैत्र शुक्ला नवमी को भगवान विष्णु ने रामावतार लिया था। प्रत्येक चैत्र शुक्ला नवमी को थांखे नियेम पुरवी मपाल मे स्थित रामजी प्रभु के मदिर मे रामलीला का आयोजन किया जाता है। श्री राम जी की प्रशसा मे प्रार्थना करते हुए नट सकीर्तन का आयोजन किया जाता है। भक्त जन व्रत-उपवास रखते हैं और मदिर मे भारी भीड होती है।

राजस्थान के प्रवासी व्यापारी अपनी दुकानों को राम नवमी के दिन सजाते हैं और सन्ध्या समय पूजा आरती करके प्रसाद वितरण के साथ अपने खाते बदलते हैं। वर्ष भर का लेन-देन चुकाया जाता है। जैन धर्म के अनुयायी भी



बसन्त रास

मणिपुर में रामनवमी का पालन करते हैं। अन्य हिन्दू दुकानदार तो इसे मनाते ही हैं। उस दिन मणिपुर के बाजारों में उत्सव का दृश्य होता है।

जलकेली

श्रीकृष्ण भगवान ने श्री राधाजी के साथ यमुना नदी या धीर समीर में जल क्रीड़ा की थी। इस घटना के आधार पर गौड़ीय वैष्णव भक्त जल-केली का उत्सव मनाते हैं। मणिपुर में भी इसी घटना के आधार पर श्री गोविन्दजी मंदिर तथा अन्य मंदिरों में ज्येष्ठ पूर्णिमा को जल केली उत्सव मनाया जाता है। दिन भर व्रत रखा जाता है और शाम के समय भक्त जल केली उत्सव में सम्मिलित होते हैं। इस अवसर पर जल केली से संबंधित संकीर्तन लीला गान किया जाता है, जिनमें श्री राधा-कृष्ण के अभिसार का वर्णन होता है और

संयोग शृंगार की इन पदों में प्रधानता होती है। यह नट संकीर्तन नूपी-पाला (स्त्री-दल) द्वारा किया जाता है, जिसको जलकेली पाला भी कहा जाता है।

कांङ चिंङबा एवं कांङलेन

मणिपुर में श्री राधा-कृष्ण-भक्ति का सन् 1697 ई० से प्रचार-प्रसार हुआ। तब से श्री राधा-कृष्ण से संबंधित विभिन्न पर्व—त्योहारों एवं उत्सव मणिपुर में मनाए जाने लगे। किन्तु कुछ त्योहारों और पर्वों की परम्परा बहुत बाद में मणिपुर में आई। रथयात्रा का त्योहार भी मणिपुर में बाद के वर्षों से मनाया जाने लगा। मणिपुर के महाराज गंभीरसिंह ने अपने शासनकाल सन् 1825-34 ई० में रथयात्रा और पुनर्यात्रा त्योहार का मणिपुर में श्री गणेश किया था। मणिपुर भाषा में इसको कांङचिंबा (रथ—खींचना) कहते हैं। आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदा को महाराज गंभीरसिंह ने प्रथम रथ यात्रा का आयोजन किया था, आज भी यह इसी दिन मनाया जाता है। "चैथरोल कुम्बाबा" नामक मणिपुर के राजवंश के इतिहास में प्रथम रथयात्रा का वर्णन उपलब्ध है। वास्तव में रथयात्रा पुरी (उड़ीसा) में श्री जगन्नाथ स्वामी के मंदिर का प्रमुख त्योहार है। चैतन्य महाप्रभु के कारण रथयात्रा का प्रचलन बंगाल में हुआ और वहाँ से यह मणिपुर में आ पहुंचा। महाराज गंभीर सिंह को अपने जीवन के प्रारंभिक वर्ष कछार या सिलहट प्रवास में व्यतीत करने पड़े थे। वहाँ रथयात्रा का त्योहार बहुत धूमधाम से मनाया जाता था। उन्हीं दिनों की बात है कि रथयात्रा और मुहर्रम त्योहार एक दिन पड़ गए। अतः गोनार खान जो कछार के नवाब थे, वे हिन्दू प्रजा से कहा कि रथयात्रा एक दिन बाद में मनाया जाए। बात बढ़ गई और हिन्दू-मुस्लिम प्रजा में विवाद उठ खड़ा हुआ। किन्तु महाराजा गंभीर सिंह ने अपने सैनिकों की सहायता से संभावित साम्प्रदायिक दंगे को टाल दिया और दोनों सम्प्रदाय के लोगों ने त्योहार शांति से मनाए।

जगन्नाथ क्षेत्र से महाराजा गंभीर सिंह ने एक पंडा बुलवाया और मणिपुर में प्रथम बार श्री जगन्नाथ, बलराम व सुभद्रा की मूर्तियाँ बनवाई। उसी की देखरेख में निर्मित एवं 40 फीट ऊँचे बारह पहियों वाले रथ का निर्माण किया गया। महाराजा ने स्वयं अपने सामंतों के साथ उस रथ को खींचा। रथ के आगे-आगे संकीर्तन दल संस्कृत कवि जयदेव के गीत-गोविन्द के पद गाते हुए तथा नृत्याभिनय करते हुए चले। महाराजा गंभीर सिंह के द्वारा

चलाई गई इस परम्परा का आज भी मणिपुर में पालन किया जाता है।

रथ यात्रा का वर्तमान स्वरूप

मध्यकाल में यह त्योहार राजमहल में आयोजित किया जाता था और इसके अनुकरण पर प्रत्येक गाँव-गली में भी इसका आयोजन किया जाने लगा। रथ पर बनाई जाने वाली अम्बाड़ी का आकार बर्मा के बौद्ध पगोडा के आकार का होता था। सम्प्रति रथ चार पहियों का होता है। रथ के निर्माण के लिए पहले राजकोष से धन दिया जाता था अब रथ प्रजा द्वारा दी गई दक्षिणा से बनाया जाता है या बस्ती का कोई धनी व्यक्ति रथ का निर्माण कराता है।



रथयात्रा काङ्चेन

रथ को चारों ओर से श्री जगन्नाथ प्रभु के बड़े-बड़े चित्रों से सजाया जाता है। रथ पर त्रिमूर्ति अम्बाड़ी के नीचे प्रतिष्ठित की जाती है। जिसके दोनों ओर दो कन्याएं चँवर डुलाती खड़ी रहती हैं। दो ब्राह्मण पुजारी मूर्तियों के सामने पूजा आरती के लिए खड़े रहते हैं। रथ को रस्सियों से भक्त जन खींचते हैं। प्रत्येक घर के सम्मुख रथ को रोका जाता है, जहाँ गृह स्वामी वर्तिका, फल

एव पुष्प अर्पित करता है। पुजारी वर्तिका को प्रज्वलित करके भक्तो को लौटाते हैं। भक्त इसकी राख को अपने मस्तक पर लगाते हैं और बाद मे अपने द्वार पर ले जाकर रखते हैं। लोक विश्वास है कि इस वर्तिका के द्वार पर रखने से उस से उस घर पर दुरात्माओ का प्रभाव नही हो सकेगा। सामूहिक दक्षिणा से तैयार किया गया खिचडी का प्रसाद भी उपस्थित जनसमूह मे पुजारी बाँटते चलते हैं।

रथ के आगे सकीर्तन दल मृदग, झाल, करताल,घटे व शख बजाते नाचते-गाते चलते हैं। सकीर्तन दल जो नृत्य सगीत प्रस्तुत करते हैं, विशिष्ट शास्त्रीय सगीत पर आधारित होता है। प्रत्येक भक्त एव सकीर्तन दल का सदस्य नगे पाँव होता है। सभी पुरुष सफेद धोती और कुर्ता व सफेद चादर ओढे हुए होते हैं। जबकी महिलाएँ भगवे रग का फनेक (लुगी-सहृमद) और सफेद रग की चादर ओढकर रथयात्रा मे भाग लेती हैं। नर्तक पुरुष दल सफेद धोती पर कमर पर सफेद कपडे की मेखला (कमरबद) बाँधते हैं। सिर पर ये लोग सफेद रग के साफे बाँधे होते हैं।

रथ यात्रा का रथ श्री गोविन्द जी मदिर से सर्व प्रथम दिन के अतिम भाग मे निकाला जाता हैं और सध्या समय पुन मदिर म लौट आता है। पुरी म रथ एव त्रिमूर्ति उसी दिन मदिर मे नहीं लौटाई जाती है। पुरी की रथयात्रा से मणिपुर की रथयात्रा इस दृष्टि से भिन्न है। पुरी में रथयात्रा केवल श्री जगन्नाथ स्वामी के मदिर से निकाली जाती है, जबकि मणिपुर म अनक मदिरो से और प्रत्येक गाँव-गली से। रथयात्रा की रात्रि स नौ रातो तक, प्रत्यक मदिर मे, भक्त जन मडप मे एकत्र होते हैं। (प्रत्येक मदिर मे मडप अवश्य होता है।)इस अवसर पर "खुबाक ईशै" नामक भजन-कीर्तन किया जाता है। 'नट चोलम" नामक ताली बजाकर एक विशेष नृत्य किया जाता है। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि मणिपुर के नृत्य राग-रागनियाँ विशेष पर्व त्यौहारो की देन है। 'खुबाक इशै" रथयात्रा त्यौहारो का आकर्षक एव महत्वपूर्ण अश है। यह स्त्रियो के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है जो उनकी कोमलता के अनुकूल है। "पुङ चोलम" विशिष्ट मृदग नृत्य है, जो कुशल कलाकारो द्वारा प्रस्तुत किया जाता हैं। ये नृत्य एव गायन विशेष शास्त्रीय पद्धति प्रस्तुत किए जाते है और इनमें भाग लेने वाले कलाकार महीनो तक पूर्वाभ्यास करते है।

इस अवसर पर जयदेव रचित दशावतार के पद भी गाए जाते हैं। इस

अवसर के गीतों में श्री कृष्ण के अक्रूर के साथ गोकुल से मथुरा जाने का वर्णन तथा राधा और गोपियों की विरह व्यथा का चित्रण रहता है।

काङलेन

आषाढ़ शुक्ला दशमी को पुनर्यात्रा का आयोजन किया जाता है। रथयात्रा के दिन की भाँति ही पुनः रथ निकाले जाते हैं और सन्ध्या-समय जब रथ लौटकर मंदिर आता है। तब तीनों मूर्तियों को वापिस मंदिर में यथास्थान रखा जाता है। रथयात्रा के दिन रथ के लौटकर आने पर मूर्तियों को मंदिर में नहीं रखा जाता है, बल्कि मंडप में रखा जाता है।

पुनर्यात्रा के दिन कहा जाता है कि कुछ वर्ष पूर्व तक एक दूसरे पर कीचड़ या पानी आदि फेंकने की परम्परा थी किन्तु अब ऐसा नहीं किया जाता है।

रथयात्रा और पुनर्यात्रा के दिन दोपहर बाद नगर व गाँवों में बस आदि सवारियों का चलाया जाना बन्द कर दिया जाता है, ताकि रथयात्रा के जलूस निकाल सकें। मणिपुर की सम्पूर्ण घाटी में उत्सव का वातावरण छा जाता है। नौ दिन तक मध्यरात्रि तक मंदिर प्रांगणों में नृत्य, गान एवं संगीत चलता है। तथा घरों में सन्ध्या का भोजन नहीं बनाया जाता है, मंदिर में ही सामूहिक भोज होते हैं। इस भोजन में कमल के पत्ते पर खिचड़ी का प्रसाद दिया जाता है। समान वेष-भूषा में सजे लोगों का बिना किसी भेदभाव के एक ही पंगत में बैठकर खाना श्लाघनीय है। दर्शक के चर्म चक्षुओं को यह त्योहार अपूर्व आनन्द प्रदान करता है तो प्रज्ञ चक्षुओं के द्वारा वह भक्ति भाव में निमग्न होता है और वह मणिपुर घाटी के लोगों के धार्मिक एवं सांस्कृतिक वैभव का अनुभव कर सकता है। नृत्य, गान, संगीत एवं अभिनय की कलात्मक-श्रेष्ठता एवं शास्त्रीय नियम बद्धता से वह अभिभूत हो जाता है।

रथयात्रा एवं पुनर्यात्रा त्योहार की परम्परा श्री कृष्ण—भक्ति की देन है।

हरि शयन एवं हरि उत्थान :

आषाढ़ शुक्ला द्वादशी के दिन मणिपुर में हरि शयन का उत्सव मनाया जाता है। सभी भक्त श्री जगन्नाथ स्वामी को प्रणाम करते हैं। सन्ध्या समय संकीर्तन का आयोजन किया जाता है। "शयनो द्वादशी दिनी सन्ध्या राती

समय ।" सकीर्तन का पद श्री गोविन्द जी तथा अन्य मदिरों मे गाया जाता है। लोक विश्वास है कि श्री जगन्नाथ स्वामी आषाढ शुक्ला द्वादशी से कार्तिक शुक्ला तक शैया पर विश्राम करते है, निद्रा मग्न हो जाते हैं। अत इन दिनों के बीच मदिर के कपाट बद रहते हैं। इन दिनों के बीच मडप म उत्सव भी हो तो भी मदिर के कपाट नहीं खोले जाते हैं।

मदिर के कपाट हरि उत्थान कार्तिक शुक्ला द्वादशी को ही खोले जाते हैं। उस दिन हरि उत्थान उत्सव का प्रत्येक मदिर मे आयोजन किया जाता है। उस दिन भी सकीर्तन का आयोजन किया जाता है।

इन दोनों उत्सवों पर मणिपुरी युवक-युवतियो द्वारा फूल तोडने की परम्परा प्रचलित है। रात्रि के समय वे एक साथ बैठकर एकत्र फूलों की मालाए बनाते हैं। रात्रि भर जागकर ये युवक-युवतियाँ लिकोल (कौडी का विशेष प्रकार का खेल) खेल खेलते हैं। कुछ वर्ष पहले युवक-युवतियो का यह प्रिय त्योहार था किन्तु इन दिनो उत्सवों पर वह उत्साह नहीं देखा जाता है।

झूलन यात्रा

झूलन यात्रा का त्योहार मणिपुर मे श्रावण शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा (पाँच दिन) तक मनाया जाता है। यह त्योहार श्रीराधा-कृष्ण मदिर या उसके माडव या मडप मे मनाया जाता है। वृदावन मे श्रावण तृतीया से झूलन लीला आरभ होती है। महाराजा नरसिंह(सन् 1844-50 ई०) ने झूलन यात्रा त्योहार मनाने की परम्परा आरम्भ की थी और इस अवसर पर भक्ति भाव पूर्ण गीत गाने की परम्परा थी। किन्तु कुछ लोग झूलन यात्रा त्योहार का प्रारभ महाराजा गभीरसिंह (1825-34 ई०) से मानते हैं। उनके शासनकाल मे रचित "श्री कृष्ण रस सगीत" मे झूलन लीला का उल्लेख है, इसी आधार पर झूलन यात्रा का प्रारभ उन्ही के शासन काल से माना जाता है।

मणिपुर मे मदिरों में सर्वप्रथम श्री राधा कृष्ण की पूजा की जाती है और उसके बाद उनकी युगल मूर्ति को मडप में निकाल कर झूलन लीला की जाती है। उपस्थित भक्त वृन्द इसको भक्ति भावना पूर्वक देखते हैं। युगल मूर्ति पर एक फव्वारे से जल प्रवाहित किया जाता है, जिससे ग्रीष्म ताप तप्त श्री राधा-कृष्ण को शीतलता प्राप्त हो। युगल मूर्ति को एक एक झूले में बैठाकर झुलाया जाता है। लोक विश्वास के अनुसार उस फव्वारे के जल की एक बूंद पीने

पर वर्ष भर हार्दिक या मानसिक शांति रहती है। इस अवसर पर गोविन्द अधिकारी कृत शुभ शारदेन्दु के सकीर्तन पद गाए जाते हैं। झूलन यात्रा त्योहार भी श्री राधा-कृष्ण भक्ति की देन है।

जन्माष्टमी

पुराणो के अनुसार श्री कृष्ण भगवान ने श्रावण कृष्णाष्टमी के दिन वासुदेव देवकी के यहाँ कारागार म अवतार लिया था। अत श्री कृष्ण भक्त मणिपुरी जनता जन्माष्टमी के दिन को महान त्योहार के रूप में मनाते हैं। सभी स्त्री-पुरुष इस दिन व्रत रखते हैं। प्रात काल ही स्वच्छ एव रग-बिरगे वस्त्रो से सुसज्जित हो फूल लेकर श्री श्री गोविन्द जी मदिर में आकर प्रणाम करते हैं और पुष्पाजलि अर्पित करते हैं। यह त्योहार बालक-बालिकाओ के लिए विशेष आनन्द का दिन है क्योकि उस दिन उनको नए वस्त्र दिए जाते हैं। नकद दक्षिणा भी। रात्रि के समय बालक-बालिए लिकोल (कौडी का खेल) भी खेलते हैं।

राधाष्टमी या ठोरानी जन्म

हिन्दी शब्द सागर (काशी नागरी प्रचारिणी सभा) मे लिखा है कि ये श्री कृष्ण के बाएँ अग से उत्पन्न हुई थी और वही गोलोक धाम के रास मडल म इनके जन्म का उल्लेख भी मिलता है। यह भी कहा जाता है कि ये जन्म लेने के साथ ही पूर्ण वयस्का हो गई थी। मणिपुर म इनके जन्म के सम्बन्ध मे यह मान्यता है कि श्रीमती राधिका ने भाद्र पद शुक्लाष्टमी के ठीक दोपहर मे अभिजित मुहूर्त मे अनुराधा ने योग करते हुए अवतार ग्रहण किया। उनके पिता राजा वृषभानु और माता कीर्तिदा महारानी थी। मणिपुर के श्री राधा-कृष्ण भक्त लोग श्रीमति राधा का जन्म दिन भाद्र पद शुक्लाष्टमी को मनाते हैं और इसको ठोरानी जन्म कहते हैं। जन्माष्टमी के दिन की भाँति ही व्रत रखना, मदिर मे जाकर पुष्प चढाना तथा बालक-बालिकाओं द्वारा "लिकोल" खेलना इस त्योहार की भी परम्पराएँ हैं।

वामन जन्म

पौराणिक कथानुसार दैत्यराज बली से देवताओ की रक्षार्थ भाद्रपद

शुक्ला द्वादशी के दिन भगवान ने वामन अवतार लिया था। इस कथा के आधार पर मणिपुरी वैष्णव प्रत्येक भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को वामन जन्म त्योहार के रूप में मनाते हैं। इसको मनाने के लिए लोग विभिन्न मंदिरों में जाते है। व्रत रखते हैं और रात के समय युवक-युवतियां लिकोल खेल खेलते हैं। प्रत्येक मंदिर में दशावतार से संबंधित नट संकीर्तन गाया जाता है।

विश्वकर्मा पूजा

विश्वकर्मा को पौराणिक आधार पर शस्त्रों का देवता मानकर मणिपुर के शस्त्र प्रयोग करने वाले, कलाकार, कारीगर भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी को विश्वकर्मा पूजा करते हैं। दुकानों को सजाया जाता है, पूरी तरह अवकाश रखा जाता है और पूजा के बाद प्रसाद वितरण किया जाता है।

दुर्गा पूजा

मणिपुर में दुर्गा पूजा का त्योहार बंगाल की तरह एक महत्वपूर्ण त्योहार है। प्रतिवर्ष आश्विन शुक्ल षष्टी से नवमी तक यह त्योहार मनाया जाता है। भारत के अन्य भागों की भांति ही दुर्गा को महिषासुर मर्दिनी युद्ध की देवी के रूप में ही मणिपुर में पूजा जाता है। दुर्गा देवी का स्थानीय नाम पान्थोइबी देवी है। उनकी पूजा भी की जाती है। दुर्गा पूजा के दूसरे दिन को "युमजबा" अर्थात गृह प्रवेश के दिन के रूप में मानाया जाता है। लोक विश्वास है कि दूसरे दिन दुर्गा देवी स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरती है और गृह या मंदिर में प्रवेश करती है। तीसरे दिन को "बोर" (वर) का दिन माना जाता है। बोर के दिन इम्फाल के दक्षिण में स्थित हियांगाङ लाइरेम्बी (कमख्या) के मंदिर में युवतियों के दल के दल वर प्राप्त करने जाते हैं।

आश्विन शुक्ला नवमी को देवी के सम्मुख भैंसा, बकरा, मुर्गा, बतक, हंस, कबूतर आदि की बलि दी जाती है। वास्तव में बलि प्रथा का पालन केवल नेपाली तथा अन्य प्रवासी ही करते हैं। स्थानीय मणिपुर लोग बलि नहीं देते हैं। यहाँ आसाम राईफल्स, मणिपुर राईफल्स आदि विभिन्न सुरक्षा वाहिनियों के मुख्यालयों में बलि दी जाती है। गली गली में दुर्गा देवी के मंडप बनाए जाते हैं और उसमें देवी के विग्रह रखे जाते हैं तथा पूजा की जाती है। पूजा के दिन मणिपुरी बालक एक दूसरे की पूजा सामग्री चुराते हैं।

मणिपुरी वैष्णवों द्वारा निर्मित मडपों में बलि नहीं दी जाती। फल-फूल आदि का भोग दिया जाता है। प्रत्येक मडप मे सकीर्तन किए जाते हैं।

दुर्गा पूजा के दिनों में मणिपुर की विवाहित स्त्रियों को मायके जाना निषिद्ध है और इस निषेध का स्त्रियाँ पालन करती हैं। मणिपुर की अहिंसक दुर्गा पूजा अनूठी है। मणिपुर मे पान्थोइबी और हियांगथाङ लाइरेम्बी पूजा प्रचलित थी किन्तु वर्तमान रूप मे दुर्गा पूजा का प्रचलन 1714 ई० से माना जाता है। महाराजा चद्रकीर्ति के शासनकाल 1850 से 1886 ई० के दौरान लुवाक इशै (तालियाँ बजाकर सकीर्तन करना), तथा स्त्री-पुरुष सकीर्तन दलो द्वारा सकीर्तन गाने की परम्परा आरम्भ हुई थी। इस अवसर पर चण्डी मगल का पाठ किया जाता है।

वावक् तानबा

आश्विन शुक्ला दशमी को मणिपुर मे क्वाक्तानबा त्योहार मनाया जाता है। इसी दिन भारत के अन्य भागो मे दशहरा, विजयादशमी आदि त्योहार मनाए जाते हैं। *क्वाक् अर्थात कौआ और तानबा का अर्थ भगाना है। श्री नियों* खोजम खेलचद्र जी ने इस त्योहार के सबध मे लिखा है, 'जिस स्थान पर कौए प्रतिदिन भोजन करने आते हैं, वहाँ पर उन्हें भगाने के लिए गोलियाँ चलाई जाती हैं। जिससे कौए भाग जाएँ। कौए डर कर जिस दिशा में उडते हैं, उससे भावी मगल-अमगल, युद्ध शाति आदि के सकुन देखे जाते हैं। इसलिए इस दिन को कौए भगाने का दिन कहते हैं।

इस त्योहार के आयोजन का उल्लेख चैथरोल कुम्बाबा में हुआ है और 14 वी शताब्दी से इसकी परम्परा बताई गई है। निश्चय ही समय समय पर इसमें परिवर्तन भी हुए होगे। पहले तीर मारकर कौओ को भगाया जाता था किन्तु परिवर्तीकाल में बन्दूक का प्रयोग आरम्भ हो गया। वास्तव में यह त्योहार राजाओ द्वारा राजमहल मे मनाया जाता था। "चैराप" नामक शाकीय विभाग इस त्योहार के अवसर पर एक झोपडी का निर्माण करता था, तो "गारद" विभाग राजा और सामतो के आगे सेनापति के नेतृत्व मे सज्जित वेश-भूषा में जाते थे। राज अलकृत सज्जित हाथी या घोडे पर सवार होकर चलता था। राजा के हाथी के पीछे भी शस्त्रधारी सैनिक चलते थे और उनके पीछे जनसमूह होता था। वाद्य यत्रो पर गायक गीत

गाते चलते थे। यह शोभा यात्रा क्वाक्सङ या कौओ की झोपडी तक जाती थी। राजा और सेनापति को जनता भेंट अर्पित करती थी। भाला तल्वार आदि के साथ नृत्य किए जाते थे। बन्दूक चलाकर कौए भगाए जाते थे और बाद मे रावण के विग्रह को बन्दूक से गोली मारी जाती थी। फिर राजा पूजा पाठ करता था और राजा जब महल मे लौटता था तो द्वार पर उसका फिर स्वागत किया जाता था। युद्ध के लिए प्रस्थान एव विजय करके लौटने से सबधित गीत इस अवसर पर गाए जाते थे। रात्रि मे फिर पूजा पाठ किया जाता था। तथा एक विशेष घास पूरे महल मे जलाकर प्रेतात्माओ को भगाया जाता था। इस प्रकार विजयादशमी के रूप मे यह शानदार त्योहार मनाया जाता था।

मेरा वायुबा और वाफूक्पा

मेरा वयुबा आश्विन पूर्णिमा के दिन आयोजित किया जाने वाला त्योहार है। मेरा वायुबा के दिन प्रत्येक घर के तुलसी चौरे के पास एक लम्बा बाँस गाडा जाता है और उसके शिखर पर कार्तिक पूर्णिमा के दिन तक दीप जलाया जाता है। मेरा वायुबा के दिन श्री गोविन्द मदिर मे कुज रास का आयोजन किया जाता है और उस दिन मणिपुर के स्त्री-पुरुष व्रत रखते हैं और रात्रि के समय मदिर मे कीर्तन मे भाग लेते हैं और कुज रास देखते हैं

वाफूक्पा त्योहार कार्तिक पूर्णिमा को मनाया जाता है और उस दिन पुन व्रत रखा जाता है। वास को उस दिन निकाल दिया जाता है। रात्रि के समय श्री गोविन्द जी मदिर मे जाकर सकीर्तन मे भक्त वृन्द सम्मिलित होते हैं तथा मध्य रात्रि से आयोजित यह रास देखते हैं। कुंजरास एव महारास की परम्परा सन 1779 ई० मे महाराज भाग्यचन्द्र ने आरभ की थी जो आज तक चली आ रही है। कुजरास एव महारास का परिचय अन्यत्र दिया जा चुका है।

गोवर्धन पूजा

कृष्ण के द्वारा इन्द्र पूजा बद करने पर इन्द्र व्रज पर कुपित हो गए थे और उन्होने व्रज पर प्रलयकारी वर्षा आरभ कर दी थी। तब भगवान कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उठाकर व्रज की रक्षा की थी। इसलिए दीपावली के दूसरे दिन गोवर्धन पूजा की जाती है। मणिपुर मे घरो एव मदिरो में

सामूहिक भोज का आयोजन किया जाता है, सन्ध्या समय धार्मिक पुस्तको का पाठ किया जाता है। इस अवसर पर गोबर से पर्वत की तथा मिट्टी से गाय की मूर्ति बनाई जाती है और इन दोनो की पूजा की जाती है। गोवर्धन पूजा भी श्री राधा-कृष्ण भक्ति से सबधित त्योहार है।

दीवाली एव इमोइनु अहोङ० वी पूजा

मणिपुर मे मैते जाति के लोग दीपावली का त्योहार भारत के अन्य भागो की भांति लक्ष्मी पूजा करके मनाते है और यह पूजा कार्तिक मास की अमावस्या के दिन की जाती है घरो को सफाई की जाती है तथा दीपक भी जलाए जाते हैं। पटाखे आदि भी चलाए जाते है।

दीपावली की भांति ही एक अन्य पर्व भी मैते जनता मनाती है, जिसे इमोइनु अहोङ० बी पूजन कहा जाता। यह पर्व पूस शुक्ला द्वादशी को मनाया जाता है और लक्ष्मी के स्थानीय रूप इमोइनु देवी की पूजा की जाती है। यह धन-सपत्ति की देवी मानी जाती है। इस पर्व के दिन लाईनिबो सनामही, लैमारेन इमोइनु आदि की पूजा का विधान है। सन्ध्या समय दीप भी जलाए जाते है। दीपावली एव इमोइनु पूजा के दिन नट सकीर्तन का आयोजन भी किया जाता है।

मणिपुरी मैते समाज मे यह विश्वास है कि इमाइनु की कृपा दृष्टि से परिवार धन्य-धान्य से सम्पन्न रहता है। नई फसल मे उत्पन्न वस्तुएँ देवी को भेंट की जाती है। प्रत्येक मैते परिवार के मध्य 'फुङ्गा लाइ' (शक्तिशाली देवी का अलाव) होता है, इसके पश्चिमी भाग मे इमोइनु का निवास माना जाता है। अलाव जलाकर इमोइनु देवी की पूजा की जाती है और नई फसल के अनाज से भोजन बनाकर खाने की प्रथा है। इस पूजा मे केवल परिवार के सदस्य ही भाग ले सकते है और उस दिन का भोजन भी केवल परिवार के सदस्य ही खा सकते है। इमोइनु देवी के सबध में ऐसा विश्वास किया जाता है कि यदि किसी घर से सध्या समय किसी को आग दे दी गई तो उस घर से इमोइनु देवी चली जाएगी, अत लोग सध्याकाल में किसी को अग्नि नही देते हैं।

सरस्वती पूजा

माघ शुक्ला पचमी के दिन पूर्वी भारत में सरस्वती पूजा का त्योहार बहुत धूमधाम से मनाया जाता है। भारत के अन्य भागो में इस शान से यह त्योहार

नही मनाया जाता है। छात्र एवं छात्राएँ प्रातःकाल स्नान ध्यान के पश्चात पूजा की पारम्परिक वेश-भूषा मे सुसज्जित होकर अपने विद्यालय में पहुँच जाते है तथा वहाँ इस अवसर पर बनाए गए विग्रह को प्रणाम करते हैं। ब्राह्मण निश्चित समय पूजा करते हैं। संस्कृत भाषा की सरस्वती की वंदना ब्राह्मण करता है और छात्र-छात्राए दोहराते है। सरस्वती विग्रह के साथ प्रत्येक स्कूल कालेज के विद्यार्थी शोभा-यात्रा निकालते हैं।

इसी दिन मणिपुर के कृषक अपने खेतो मे धान-गेहू पूजा पाठ के साथ बोते है, इसको "लोसाबा" कहा जाता है।

निङोन चक्कोबा

कार्तिक शुक्ल द्वितीया को प्रत्येक बहन भातृ द्वितीया (भैया दूज) मनाने अपने भाई के घर जाती है। निङोन चक्कोबा का अर्थ भगिनी भोज है। मणिपुर में यह त्योहार विशेष उत्सव के रूप मे मनाया जाता है। प्रत्येक बहन वस्त्राभूषण से सजकर अपने मायके जाती है। बहन का उस दिन मायके में विशेष सम्मान किया जाता है। परिवार के साथ सामूहिक भोज होता है। बहन को भाई तथा भाभी, माता आदि की ओर से वस्त्राभूषण भी दिए जाते हैं। बहन को ही नहीं उसके बच्चो के लिए भी कुछ न कुछ सामग्री अवश्य दी जाती है। बहन दक्षिणा प्राप्त करके मायके के लोगो के लिए मगल कामना करती है। लोक विश्वास है कि उसकी इसी दिन की मगल-कामना अवश्य फलवती होती है। बहन भोजन के बाद परिवार की स्त्रियो तथा कन्याओ के साथ बैठकर अपने ससुराल के दु ख-सुख की बातें कहती है। शाम को वह अपने घर लौट जाती है। निङोन चक्कोबा से पूर्व बाजार से खूब खरीददारी की जाती है और प्रत्येक भाई अपनी बहन को उत्तम भोजन कराता है तथा सामर्थ्यानुसार अधिकतम भेंट भी देता है।

याओसङ एवं हलंकार

उत्तर पूर्वांचल मे स्थित मणिपुर राज्य की होली सम्पूर्ण भारत मे अपनी परम्पराओ के कारण महत्वपूर्ण है। फाल्गुन पूर्णिमा से चैत्र कृष्ण पंचमी तक मणिपुर मे होली का त्योहार बहुत धूमधाम से मनाया जाता है। मणिपुर की घाटी मे रहने वाले मैतै या मणिपुरी वैष्णवो का यह सबसे बड़ा त्योहार है। फाल्गुन महीने के प्रारम्भ से ही इम्फाल, काकचिं, मोयरा आदि स्थानों के

बाजारों में जन समूह उमड़ पड़ता है। इसे 'फगुआ' की खरीददारी कहा जाता है। नए बर्तन, वस्त्र, जूते, आभूषण आदि विविध वस्तुएँ खरीदने के लिए बाजारों में भी भीड़ के साथ कोलाहल छा जाता है। वर्षभर में सबसे अधिक बिक्री तथा भीड़ का समय फाल्गुन मास होता है। होली के इस रंगीन त्योहार पर मणिपुर में निम्नलिखित विशिष्ट परम्पराएँ प्रचलित हैं।

याओसङ् जलाना

फाल्गुन पूर्णिमा के दिन मणिपुर वैष्णव गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में विश्वास रखने के कारण उपवास रखते हैं। कृष्णावतार चैतन्य महाप्रभु ने 1479 ई० में बंगाल के नादिया नामक स्थान पर फाल्गुन पूर्णिमा को अवतार लिया था। कहते हैं उनका जन्म एक नीम के वृक्ष के नीचे याओ (भेंड़) सङ् (झोपड़ी) में हुआ था। उस झोपड़ी को पवित्रता की दृष्टि से जला दिया गया था। अत उसी परम्परा का पालन करते हुए मणिपुर वैष्णव प्रतिवर्ष फाल्गुन पूर्णिमा को एक बांस व घास फूस की बनी झोपड़ी में नाचते गाते और कीर्तन करते हुए सध्या समय, चैतन्य महाप्रभु की मूर्ति को ले जाकर रखते हैं। कीर्तन व पूजा अर्चना के बाद मूर्ति को झोपड़ी से निकाल लिया जाता है और तब झोपड़ी म आग लगाई जाती है। उस समय मुख्य पुजारी 'हरि बोला' कहता है और उसके बाद उपस्थित जनसमूह 'हे होरि' बोलता है। जब तक याओसङ् जलकर भस्मीभूत नहीं हो जाता है ये नारे आकाश में गूँजते रहते हैं। जब झोपड़ी जल जाती है तो उसकी राख को लोग अपने घरों में ले जाकर रखते हैं जिससे घर पर दुरात्माओं का प्रभाव न पड़े।

याओसङ् जलाने के साथ भगवान कृष्ण के जीवन की निम्नलिखित घटना का भी उल्लेख किया जाता है। जिसम जटिला और कुटिला के द्वारा बाधा उपस्थित करने पर जब भगवान् कृष्ण-राधा से मिल नहीं पाए तो उन्होंने राधा के घर के भेंड़ रखने के स्थान मे आग लगा दी और जब वे दोनों अपनी भेड़ों की रक्षा करने गईं तो कृष्ण और राधा का मिलन सभव हुआ था। याओसङ् जलाने के पीछे लोग भक्त प्रहलाद तथा होलिका के जल मरने की पौराणिक कथा को भी स्वीकार करते हैं। इस अवसर पर गाए जाने वाले गीतों में चैतन्य महाप्रभु की जीवन लीलाओं का वर्णन रहता है तथा राधा कृष्ण वियोग और मिलन की उक्त घटनाओं का भी उल्लेख होता है। ये पद मणिपुरी भाषा में न होकर केवल बगला, सस्कृत तथा मैथिली भाषा के धार्मिक पद होते हैं।

थावल चोङबा चाँदनी रात का लोक-नृत्य

मणिपुर की एक पौराणिक कथा के अनुसार अत्या गुरु सिदबा (भगवान शंकर) और लैमारेन (देवी पार्वती) ने सृष्टि के उपरान्त लाइ (देवताओं) हरौबा (की प्रसन्नता क्रीडा) नृत्य देवताओं के साथ किया था। अब प्रति वर्ष बसन्त के आगमन से वर्षा ऋतु के अंत तक लाई हरौबा का आयोजन किया जाता है और लाई हरौबा नृत्य दिन में किया जाता है। गुरु सिदबा सृष्टि के पश्चात् स्वर्ग चले गए और पृथ्वी का भार अपने पुत्र पाखबा के सिर पर रख गए। पृथ्वी के भार से पाखबा थक गए अतः गुरु सिदबा ने स्वर्ग से 7 अप्सराओं को पाखबा का नृत्य द्वारा मनोरंजन करने के लिए भेजा। उन अप्सराओं ने नृत्य करके पाखबा का मनोरंजन किया और वे स्वर्ग में वापिस नहीं गई और पृथ्वी पर ही रह गईं। इस कथा को थावल (चाँदनी रात) चोंगबा (उछल-कूद कर नृत्य करना) की उत्पत्ति का कारण माना जाता है और नृत्य फाल्गुन पूर्णिमा की रात से आरंभ होता है।

फाल्गुन पूर्णिमा की रात से ही याओसङ् दोलजात्रा या होली का त्यौहार भी आरम्भ होता है। थावल चोङबा नृत्य पूर्णिमा की चाँदनी रात में आरंभ होता है। बसन्त की मादक पवन थिरकती है और युवा हृदय में भाव-लहरियाँ उत्पन्न होती हैं। मन्त्र मुग्ध से युवक और युवतियाँ इस चाँदनी रात में गाँव-गली के खुले मैदान में एकत्र होते हैं। मैदान के मध्य में ढोल और तफत (डफ) लेकर वादक पहुँचते हैं और जैसे ही ढोल पर थाप पड़ती है युवा मन-मयूर झूमकर नाच उठता है। ढोल व तफत वादकों तथा गायक को केन्द्र बनाकर युवा युवती एक दूसरे का हाथ थामकर एक गोल घेरा बना लेते हैं। संगीत की ताल पर नर्तक युवा युवतियों के पाँव थिरकने लगते हैं। घेरा बनाते समय एक युवक के बाद एक युवती का क्रम रखा जाता है। नए आने वाले भी इस घेरे में शामिल होते जाते हैं और यह घेरा बढ़ता जाता है। केन्द्र में खड़ा गायक गीत की पंक्ति बोलता है और उस पंक्ति को सारे नर्तक दोहराते हैं। यह प्रधान गायक जिसको इशै हनबा कहते हैं, बीच-बीच में "हरि बोला" बोलता है और नर्तक "हे होरि" अर्थात् हे हरि बोलते हैं। यद्यपि यह मणिपुर का प्राचीन लोक नृत्य है किन्तु इसको भी वैष्णव धर्म के प्रभाव ने प्रभावित किया है। इसीलिए "हरि बोला हे होरि" के नारे बीच-बीच में लगाए जाते हैं।

मुख्य गायक प्राचीन मणिपुरी लोक गाथाओं के अंश तथा प्रेम-कथात्मक

गीत भी गाता है। इन प्राचीन लोक गाथाओं और गीतों से इस नृत्य की प्राचीन परम्परा परिलक्षित होती है। यह भी स्पष्ट है कि वैष्णव भक्ति के प्रचार-प्रसार से बहुत पहले यह नृत्य प्रचलित था। वैष्णव धर्म-विशेष रूप से चैतन्य सम्प्रदाय के प्रभाव के परिणाम स्वरूप इस अवसर पर जयदेव के गीत, गोविन्द के पद या विद्यापति के पद और बंगाली गीत भी गाए जाते हैं। इनमें राधा कृष्ण के संयोग वियोग का वर्णन प्रमुख होता है।



मणिपुरी महिलाओं का नृत्य

नृत्य करते समय नर्तक बाँए से दाहिनी ओर घूमते हैं। नृत्य एक सीधे वृत्त की परिधि पर होता है और कभी कभी नर्तकों की संख्या बढ़ जाने पर अनेक सर्पाकार मंडल बना लेते हैं जिसे लाईरेन मथेक चतपा कहा जाता है। इसमें दो-तीन वृत बना लिए जाते हैं और नर्तक पंक्तियां बहुत ही धीमी गति में कभी आगे तो कभी पीछे की ओर बढ़ते हैं। इस नृत्य में हाथ तो वृत की

ृंखला बनाते हैं अतः केवल पाँवों की ही गति प्रमुख होती है। पहले दाहिने पाँव को उठाकर आगे किया जाता है और दूसरी बार बाँए पाँव को। इस प्रकार पाँवों पर उछलते हुए यह नृत्य किया जाता है। इस नृत्य मे स्त्री-पुरुष दोनों भाग लेते हैं। नृत्य के लिए किसी पूर्वाभ्यास की या प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है। प्रत्येक व्यक्ति इसमे भाग ले सकता है और लेता भी है। इसीलिए कहा जाता है कि मणिपुर मे कोई स्त्री या पुरुष ऐसा नही जो नाचना न जानता हो। अतोम बापू शर्मा जो मणिपुरी संस्कृति के विशेषज्ञ माने जाते हैं, ने इस नृत्य के सम्बन्ध में कहा था कि सृष्टि के आरंभ से ही मैतै (मणिपुरी) लोग यह नृत्य करते आए हैं और इस नृत्य मे नर्तक उषाकाल मे सूर्य की किरण के आगमन का अनुकरण करते हैं।

इस नृत्य का समय फाल्गुन पूर्णिमा सहित छः दिन तक माना जाता था। चैत्र कृष्णा पचमी को मणिपुर का हलकार या लाई कंथेल काबा अर्थात देवताओं का बाजार जाना त्योहार होता है। थाबल चोङ्बा का अंतिम नृत्य हलकार की रात्रि को होना चाहिए। किन्तु इस प्राचीन परम्परा को अब नही माना जाता है और अब थाबल चोङ्बा दिन मे भी किया जाता है और चैत्र की अमावस्या तक भी चलता रहता है। इसके साथ एक परिवर्तन और भी हुआ है अब थाबल चोङ्बा नृत्य बैंड पर किया जाता है और बैंड पर मणिपुरी गीतों और हिन्दी फिल्मी गीतों की धुनें भी बजाई जाती हैं।

थाबल चोङ्बा मे भाग लेने वाले नर्तकों को विशेष साज-सज्जा की आवश्यकता नही होती है। नित्य प्रति स्त्रियों एव पुरुषो द्वारा पहने जाने वाले सामान्य वस्त्र ही नृत्य की वेश-भूषा होती है। स्त्रियाँ फनेक (तहमद) बाधती हैं और चादर या शाल ओढती है और पुरुष धोती व कुर्ता पहनते हैं तथा गले मे सफेद दुशाला डाले रहते हैं। स्त्रियो का फनेक व शाल रंग-बिरंगी होती है जबकि पुरुषों की वेश-भूषा सफेद होती है। किन्तु आजकल पेंट-बुशर्ट या टाई-सूट लगाकर भी पुरुष नाचते हैं और कुछ महिलाएँ साड़ी पहनकर भी नाचती हैं। वेश-भूषा सबधी कोई प्रतिबंध नही है किन्तु नाच मे सम्मिलित होने से पूर्व जूते उतारना आवश्यक है। इस नृत्य मे भाग लेने वाले नर्तकों की शक्ति का परीक्षण होता है और निर्बल नर्तक कुछ देर ही नाचकर थक जाते हैं।

आधुनिक समाज सुधारक थाबल चोङ्बा का विरोध करते हैं और कहते हैं कि इस सुन्दर लोक नृत्य के माध्यम से युवक-युवतियों को एक दूसरे से मिलने

उसी मार्ग से उतरना मना है। सभी भक्तो या यात्रियो के हाथो में जलती हुई मशालें होती हैं। घने जंगल और पर्वत की दुर्गम चढ़ाई और जंगली जानवरो के भय के बावजूद यह चढ़ाई रात भर जारी रहती है, प्रातःकाल चार बजे के आस पास यात्री पर्वत शिखर पर पहुँचते हैं जहाँ शिव मंदिर बना है। वहाँ वे सरस्वती कुंड में स्नान करके नोडपोक निङ्थो एवं शिवजी की पूजा करते हैं। मंदिर में शिवलिंग पर पुष्प तथा कुछ सिक्के भी चढाते हैं। पर्वत पर चढ़कर शिव पूजन करने वालों की मनोकामना पूर्ण होती है। भारत में शिव पूजा के दिन यह मशाल यात्रा और कही नही की जाती है। इस मंदिर को नव जागरण के नाम पर युवको ने तोड दिया था किन्तु आज भी प्रतिवर्ष यह मशाल यात्रा निश्चित समय पर होती है। युवक एवं युवतियाँ साथ-साथ पर्वत पर चढते हैं किन्तु पवित्र भावना से ऐसी मान्यता भी है कि वारुणी यात्रा पर जाने वाले युवक-युवतियो का आपस मे विवाह नही हो पाता है। वारुणी के दिन शिव पूजन का यह अद्भुत पर्व प्रतिवर्ष मनाया जाता है। पर्वत पर अँधेरी रात में मशालो की टेढ़ी-मेढी कतारें देखते ही बनती है।

माघ कृष्ण चतुर्थी को शिवरात्रि भी मनाई जाती है। भगवान शंकर को लोग भाँग का भोग लगाते हैं। रात्रि जागरण किया जाता है जिसमें शिव-दुर्गा की स्तुतियाँ प्रमुख होती हैं।

ईसाई त्यौहार

मणिपुर के पर्वतीय क्षेत्र मे रहने वाले जन जातीय लोग ईसाई धर्म मानने लगे है और उनमें बहुत कम लोग हैं, जिन्होने अभी तक ईसाई धर्म ग्रहण नही किया है। ईसाई धर्म का विशेष त्यौहार क्रिसमस है। 20 दिसम्बर से एक जनवरी तक मणिपुर मे उत्सव का वातावरण छा जाता है। इन दिनो बाज़ार मे पर्वतीय जन की भीड देखने योग्य होती है। स्थान-स्थान पर गिरजे और चर्च हैं, जिनमे प्रार्थनाएँ और सामूहिक भोज होते हैं। परस्पर क्रिसमस एवं नववर्ष की शुभकामनाओ का आदान प्रदान किया जाता है। गुड फ्राइडे भी ईसाई धर्मानुयायियो का प्रमुख त्यौहार है। अन्य धर्म के लोग भी अपने ईसाई मित्रो को बधाई देते हैं।

मुस्लिम त्योहार

ईद उल फितर तथा ईद उल जुहा त्योहारो के दिन मुसलमान भाई ईद-गाह मे नमाज पढते हैं तथा एक-दूसरे को बधाई देते है। अन्य धर्मावलम्बी भी इन्हे बधाई देते हैं।

जैन त्योहार

मणिपुर मे रहने वाले लोग इम्फाल मे पावना बाजार स्थित जैन मदिर से महावीर जयन्ती के दिन धूमधाम से शोभा-यात्रा निकालते हैं और इस अवसर पर अन्य धर्मों के लोग भी इस शोभा-यात्रा में सम्मिलित होते हैं।

सिख त्योहार

इम्फाल स्थित गुरुद्वारे से गुरु नानक जन्म दिन, गुरु तेग बहादुर आदि गुरुओ के दिन तथा बैसाखी के दिन शोभा-यात्राएं निकाली जाती हैं। इन विशेष अवसरों पर गुरुद्वारे में लगर का आयोजन होता है, जिसमें विभिन्न धर्मों के लोग एक पंगत मे बैठकर भोजन करते हैं।

मणिपुर मे साम्प्रदायिकता या धार्मिक कट्टरता का नितान्त अभाव हैं। प्रत्येक धार्मिक उत्सव, पर्व एवं त्योहार पर मणिपुर मे जो भाईचारे की भावना देखी जाती है, वह अनुकरणीय है। मणिपुर मे विभिन्न धर्मों के लोग प्रेम से रहते हैं। यहाँ कभी साम्प्रदायिक उत्पात नही होते है। हनुमान जयती के दिन प्रतिवर्ष महाबली के मदिर से शोभा यात्रा निकाली जाती है, जिसमे सभी सम्प्रदाय के लोग सम्मिलित होते हैं।

नृत्य एवं लोक नृत्य

नृत्य एव सगीत मणिपुरी जनजीवन एव सस्कृति के अभिन्न अग है। प्रत्येक धार्मिक उत्सव, पर्व, त्योहार के साथ नृत्य जुडा हुआ है। नृत्य-सगीत के क्षेत्र मे मणिपुर की श्रेष्ठता का कारण मणिपुर की जनता की कला में गहरी अभिरुचि है। प्रत्येक कलाकार, खिलाडी आदि को दर्शक साधुवाद देते हैं, इसलिए कलाकार निरन्तर अपनी कला का परिष्कार करता है। समाज मे सम्मान पाने के लिए कलाकार दत्त-चित्त होकर अभ्यास करते हैं। समाज और

राज्य के द्वारा कलाकारो को सरक्षण एव प्रोत्साहन देने की प्राचीन परम्परा रही है। इसलिए मणिपुर में नृत्य एव अन्य कलाएँ निखरती गई हैं और आज भी निखरती जा रही हैं। मणिपुर म लोक नृत्यो की प्राचीन परम्परा रही है जिनमे बालक से वृद्ध तक सम्मिलित होते हैं, चाहे वे स्त्री हो या पुरुष। इसलिए मणिपुर मे कहा जाता है कि कोई ऐसा व्यक्ति नही जो नाचना न जानता हो। प्रत्येक मैंते घर मे 'शघोई' (बरामदा) होता है, और प्रत्येक गाँव व बस्ती मे मदिर होता है जिसमे एक बडा मडप बना होता है। इस मडप में नृत्य गान का आयोजन होता रहता है। इस प्रकार नृत्य-गान दैनिक जीवन का अग बन गया है।

नृत्य का आदिम रूप लोक नृत्य है। लोक नृत्य से शास्त्रीय नृत्य का विकास हुआ है।

मणिपुर राज्य के नृत्यो को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता हैं।

मैंते नृत्य तथा जनजातीय नृत्य। मैंते नृत्य के भी तीन भाग किए जा सकते हैं :—

(1) लोकनृत्य—लाइराओबा, थाबल चोङ्बा, के-ड्रे-के चोङ्बा, मायबी, चिङ-लैरोल, खम्बा-थोइबी, थाङ्बा एव थाङ नृत्य।

(2) रास नृत्य—विभिन्न प्रकार की रास लीलाओ को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। इनमें कुछ पूर्ण शास्त्रीय नृत्य हैं तो कुछ लोक तत्वो से युक्त।

मणिपुरी मे 'जगोई' शब्द इन नृत्यो के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

(3) चोलम—चोलम का अर्थ भी नृत्य होता है किन्तु इनमें नर्तक के हाथो मे ढोलक या करताल रहती हैं। इनमे पुङ चोलम और करताल चोलम प्रमुख हैं।

मणिपुर अपने नृत्य के लिए भारत मे ही नही सम्पूर्ण विश्व मे प्रसिद्ध हैं।

शताब्दियों मे जाकर मणिपुरी नृत्य का विकास हुआ है जो आज भी अपनी अलग पहचान रखता है और भारत के नृत्यो मे अपना विशिष्ट स्थान रखता है। आधुनिक मणिपुर प्राचीन काल में अनेक जन पदो एव लघु राज्यो में विभाजित था, आज भी मणिपुरी नृत्य पर अपने प्राचीन जन पदो की छाप अकित हैं।

मणिपुर के शास्त्रीय नृत्य की नींव मणिपुर में वैष्णव धर्म के प्रवेश से पूर्व ही रखी गई थी, जबकि मणिपुरी नृत्य का उत्तरकाल मे केवल उसी नीव पर विकास हुआ है। मूल धारणाओं की स्थापना इसी काल मे हुई थी। मणिपुर के इतिहास के प्रारम्भ से ही नृत्य, सगीत एव धर्म तीनो परस्पर घनिष्ठ रूप से सबधित थे। चाहे मणिपुर की घाटी के लोग हो या पर्वतो के दोनो के लिए ही यह तथ्य समान रूप से लागू होता है। प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान के साथ नृत्य एव सगीत जुडा हुआ है। नृत्य केवल नृत्य के लिए न होकर धार्मिक कृत्यो से सुसम्बद्ध रहा है। विभिन्न देवताओ को प्रसन्न करने के लिए अत्यन्त विनम्रता समर्पण भाव के साथ नृत्यो का आयोजन किया जाता रहा है। परिणाम स्वरूप मणिपुरी नृत्य की कुछ सामान्य विशेपताओ ने जन्म लिया है।
जिसमे प्रमुख हैं :—

—नृत्य-शाला की पवित्रता,

—नर्तकों एव दर्शकों के मध्य वार्तालाप, सकेत आदि का निषेध

—नृत्य देवता के प्रति अति विनम्रता एव समर्पण

—नृत्य अनुष्ठान हैं, न कि दर्शकों के मनोरजन का साधन

—नृत्य व्यवसायिक नही बन सका

—शास्त्रीय तत्व के ताल, गति के नियमो के उपरान्त भी मणिपुरी नृत्य आज भी लोक नृत्य है और कोई भी मणिपुरी चाहे उसको नृत्य की शिक्षा मिली हो या नही नृत्य में भाग ले सकता है। नृत्यो की इन सामान्य विशेषताओ के उपरान्त मणिपुर के कुछ प्रमुख नृत्यो का वर्णन प्रस्तुत है।

मणिपुर मे अज्ञातकाल से लाइहराओबा लोक नृत्य का प्रचलन रहा है। इसका त्योहारो के अन्तर्गत विस्तार से उल्लेख किया जा चुका है।

के-क्रे-के चौडवा :

साइहराओबा के पश्चात दूसरा मैतै लोक-नृत्य है के-क्रे-के चौडवा। इस नृत्य की उत्पति के संबंध में भी एक स्थानीय पौराणिक कथा प्रचलित है। गुरु सिदबा तथा देवी लैमारेन एक दिन काइबा नामक स्थान पर आए। गुरु सिदबा अपने सिंहासन पर विराजमान थे। उन्होने अपने पुत्र सनामही और पाखड्बा को बुलाया तथा पृथ्वी की परिक्रमा करने को कहा तथा पहले आने वाले को सिंहासन देने का वचन दिया। पाखड़बा छोटा भाई था तथा सनामही बड़ा। पाखड़बा पृथ्वी का चक्कर लगाने के बजाय पिता के सिंहासन के सात चक्कर लगाकर पिता के सिंहासन पर बैठ गया। जब सनामही पृथ्वी का चक्कर लगाकर लौटा तो उसने पाखड़बा को क्रोधित होकर ललकारा। दोनों भाइयों में युद्ध की संभावना देखकर गुरु सिदबा ने नौ देवताओं और सात देवियों को स्वर्ग से सनामही को शान्त करने के लिए भेजा। इन्होंने एक दूसरे का हाथ थामकर पाखड़बा को वृत के केन्द्र में ले लिया तथा बाएँ से दाहिनी ओर गाना गाते हुए उछलना-कूदना आरंभ कर दिया। यह नृत्य कैयेल या के-क्रे के चौडबा (चौड्बी) के नाम से प्रचलित हुआ। अब सनामही नृत्य वृत की परिधि पर नाचने वाले नर्तक दल के बाहर बाघ और केन्द्र में पाखड़बा एक मुर्गे के रूप में रहते हैं। बाघ और मुर्गा प्रतीक हैं। बाघ (सनामही) जब मुर्गे (पाखड़बा) पर झपटना चाहता है, नर्तक-दल अपने घेरे से उसको रोकते हैं। यदि कभी वह घेरा तोड़कर भीतर चला जाए तो वे पाखड़बा को घेरे से बाहर कर देते हैं और सनामही को घेरे में रोकते हैं। यह नृत्य 18 वीं शताब्दी तक प्रचलित था, बाद में इसको थाबल चौड्बा नृत्य में ही मिला दिया गया तथा होली और दोल यात्रा त्यौहार पर इसका आयोजन होने लगा। याओसङ एवं हुलकार शीर्षक में इस नृत्य का विवरण दिया गया है। के-क्रे-के चौड्बा एवं थाबल चौडबा में केवल एक अन्तर है। प्रथम में सनामही तथा पाखड़बा नृत्य दल के घेरे के बाहर भीतर नृत्य करते हैं तथा नर्तकों की गति को प्रभावित करते हैं, किन्तु दूसरे में ऐसा नहीं है।

मायबी नृत्य

वास्तव में के-क्रे-के चौडबा, थाबल चौडबा की भाँति ही मायबी नृत्य भी लाइपराओबा लोक-नृत्य का अंग है। यही माला नृत्य, तलवार नृत्य

आदि भी है। मायबी नृत्य में पुजारी (सन्यासी) मायबी के जल में से देवात्मा को जागृत करने से इस नृत्य का आरंभ होता है और पृथ्वी को समतल करने, सृष्टि के विकास एव पोषण की प्रतीकात्मक रूप में इस नृत्य मे प्रस्तुत किया जाता है। इस नृत्य मे मत्र-तत्र विद्या का प्रयोग किया जाता है। और रिहइल तथा येङ्को नामक नृत्य मायबी नृत्य के भेद है और इनका आयोजन गोपनीय होता है। इन नृत्यो द्वारा समृद्धि या विनाश सभव है। ऐसा विश्वास प्रचलित है। इस नृत्य को कोई देख नही सकता।

चिङखैरोल-नृत्य

यह साधको के द्वारा सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए किया जाने वाला नग्न नृत्य है जिसमे कोई दर्शक नही होता है।

खम्बा-थोइबी नृत्य

यह दो नर्तकों का नृत्य है—जिसमे एक पुरुष एव एक स्त्री भाग लेती है। खम्बा-थोइबी के अमर प्रेम की कथा इस नृत्य का आधार है। इसमें गति कभी बहुत तीव्र एव बलवती होती है तो कभी अत्यत मद। मोइरांग नगर के प्राचीन मोइरांग वश से इस नृत्य का सबध है। थोइबी मोइरांग के राजा की पुत्री थी जो खम्बा नामक सामत कुमार से प्रेम करती थी। इन्हे शिव एव पार्वती का अवतार माना जाता है। मोइरांग मे थाङजिङ देवता का ऐतिहासिक मदिर है, जहाँ समय समय पर इस नृत्य का आयोजन होता है। खम्बा की भूमिका में युवक एव थोइबी की भूमिका मे कोई युवती भाग लेती है जबकि पेनाखोगबा (एक तारा बजाने वाला) एक तारे पर सगीत प्रस्तुत करता है।

ये दानों पुरुष नृत्य हैं और तांडव श्रेणी मे रखे जा सकते हैं। इनमें नर्तकों की त्वरा एव कौशल देखते ही बनता है।

रास नृत्य

रास नृत्य मणिपुर को वैष्णव सस्कृति की देन है। साथ ही यह मणिपुर सस्कृति की भारतीय सस्कृति को अनुपम देन भी है। क्योंकि मणिपुर के नर्तकों ने रास-नृत्य को शास्त्रीय सिद्धांतो का आधार दिया तथा इसको अपनी प्रतिभा

से निखार कर मणिपुरी शास्त्रीय नृत्य का रूप दे दिया है, जो आज विश्व-प्रसिद्ध मणिपुरी-नृत्य के नाम से जाना जाता है। रास नृत्य का मणिपुर में प्रचलन करने का श्रेय महाराजा राजऋषि भाग्यचन्द्र (शासनकाल सन् 1763 से 98 ई० तक) को जाता है। उनको भगवान कृष्ण ने स्वप्न में अपनी मूर्ति स्थापित करने की आज्ञा दी थी और मूर्ति स्थापना के पश्चात उन्हें रास लीला के आयोजन की आज्ञा थी। अतः उन्होंने अपनी पुत्री को राज कुमारी बिम्बावती को राधा का अभिनय करने की प्रेरणा दी। लांगथबाल जिसे अब कांचीपुर कहा जाता है वहाँ महाराजा भाग्यचन्द्र ने एक जलाशय, वन-



वाया तथा एक कृत्रिम नदी बनवाई गई (उस स्थान को महाराज वृंदावन का रूप देना चाहते थे) और जलाशय के किनारे रास मडल बनवाया गया जिसमें राज कुमारी बिम्बावती मंजुरी ने राधा का अभिनय किया तथा प्रथम रास लीला की गई। बिम्बावती आजन्म कुमारी रहीं और अपने जीवन के अंतिम काल में वे नव-

द्वीप (पश्चिमी बँगाल) में जा कर रही थी। वहीं उनकी मृत्यु भी हुई। मणिपुर में आज उन्हें सिजा लँइरोबी के नाम से जाना जाता है। जिसका अर्थ होता है राजकुमारी जो देवी बन गई या वह राजकुमारी जो भगवान की सेवा में समर्पित हो गई। वे मणिपुर की मीरा थी।

सिजालँइरोबी ने मणिपुर में रास नृत्य का आरभ किया जो निरन्तर विकसित होता गया और मणिपुरी नृत्य-गुरुओं ने अपनी प्रतिभा से उनको आज महान मणिपुरी नृत्य बना दिया है।

रास लीला व नृत्य मे भगवान् कृष्ण के राधा एव गोपियो के आलौकिक प्रेम की कथा रहती है जिसका आधार श्री मद्भागवद का दशम अध्याय है। मणिपुरी मैतै राधा कृष्ण के उपासक हैं। अत मणिपुर की धरती पर यह नृत्य फला और फूला। इसे राजाओ का सरक्षण भी मिलता रहा। नृत्य-प्रिय मणिपुरी लोगों ने अपने लोक नृत्यो एव रास-नृत्य का ऐसा सम्मिश्रण किया कि आज उनमें भेद कर पाना कठिन हो गया है। नृत्य की वेश-भूषा भी मणिपुरी प्रतिभा की अपनी देन है।

रास नृत्य को दो प्रमुख भागो मे विभाजित किया जा सकता है। एक गोप रास जिसम कृष्ण अपने गोप सखाओ के साथ गायें चराते हैं और वे ईश्वर अवतार के रूप में चित्रित किए जाते है। गोष्टाष्टमी के दिन गोप रास या सनसेनबा रास का आयोजन होता है। गोपाल गोष्ठ लीला, उलूखल लीला, गोष्ठलीला भी इसके अन्य रूप हैं।

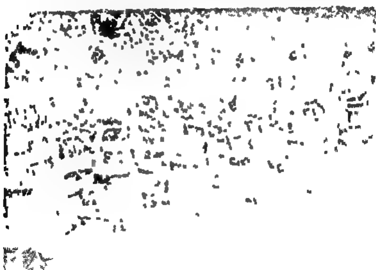
दूसरा भेद है—श्री कृष्ण रास लीला। जिसमे श्री कृष्ण के राधा एव गोपियो के साथ दिव्य प्रेम की झाँकी प्रस्तुत की जाती है। इसके चार भाग हैं—महा-रास, कुंजरास, बसतरास एव नित्यरास। कार्तिक पूर्णिमा के दिन महारास का आयोजन किया जाता है, आश्विन पूर्णिम को कुजरास, तो वैशाख पूर्णिमा को बसत रास और नित्यरास किसी भी दिन। नित्यरास को दिवारास और निशी-रास—इन दो भागो में और विभाजित किया जाता है। नर्तन रास, अष्ट गोपी-अष्ट श्याम रास भी परवर्ती काल के रास नृत्य हैं।

मणिपुरी रासलीला मे एकाकी नृत्य, द्वैत नृत्य, कृष्ण-राधा, या राधा-वृन्दा, या चन्द्रावली के साथ होते हैं तो समूह नृत्य मे कृष्ण अनेक गोपियो के साथ नृत्य करते हैं। नित्य रास में भगो, परेंग, वृन्दावन परेंग, खुरुम्बा परेंग शास्त्रीय नृत्य हैं जो प्रस्तुत किए जाते हैं।

वासक तथा सुवाक ईशं नामक दो अन्य नृत्य राधा और उसकी सखियों द्वारा किए जाते हैं तथा इनमें लड़कियाँ ही भाग ले सकती हैं। इनमे राधा तथा गोपियो के विरह भाव भाव की प्रधानता रहती है। वासक ईशं किसी भी समय किया जा सकता है जबकि सुवाक ईशं केवल रथ यात्रा के अवसर पर ही आयोजित किया जाता है इसमे करतल ध्वनि द्वारा मृदग की ताल के साथ सगीत की धुनें उत्पन्न की जाती हैं।

नट सकीर्तन के साथ नृत्य

नट सकीर्तन के साथ पुङ चोलम (मृदग नृत्य) तथा करताल चोलम नृत्य किए जाते हैं। विभिन्न प्रकार के इन नृत्यों में दो से सौ वादक तक भाग लेते हैं। मृदग वादक कलाकार मृदग पर गरुड के उड़ने, बादलों के गर्जन, चिड़ियों



कबुई नारी नृत्य करते हुए

तथा पशुओं की ध्वनि उत्पन्न करते हैं तो दर्शक मत्र मुग्ध हो जाते हैं। प्रारभ मे नर्तक मद गति में नृत्य आरम्भ करते है और यह गति धीरे धीरे तीव्र होती है। एक पाँव पर नृत्याभिनय, हवा मे उछलना आदि के करतब, अग सचालन द्वारा दिखाए जाते हैं। मृदग पर थाप देकर उसको शून्य में उछाल दिया जाता

है और वह शून्य में भी ध्वनित होती है, यह मृदंगवादन एवं नृत्य कला का अद्भुत कौशल है। करताल नृत्य में भी इसी प्रकार की भाँति-भाँति की कलाबाजी दिखाई जाती है। मोर, हंस, हाथी तथा सरस की चाल का प्रदर्शन भी किया जाता है।

जन-जातियों के नृत्य

मणिपुर के पर्वतीय भाग में 29 प्रमुख जन-जातियाँ रहती हैं। इनके भी अपने नृत्य हैं। नागा लोगों के युद्ध-नृत्य एवं भाला-नृत्य तीव्र गति के साथ रंग बिरंगे आदिम जाति की पोशाकों में सुसज्जित होकर स्त्री-पुरुष साथ-साथ करते हैं। ये भी मनमोहक तथा उत्साहवर्द्धक होते हैं। नृत्य के साथ तेज ढोल बजाए जाते हैं, श्रृंगी बजती है और नर्तकों के गान की स्वर लहरी भी उभरती है। नृत्य के साथ उत्सव-गीत, प्रेम के गीत, क्रिया गीत, युद्ध गीत या बलि गीत गाए जाते हैं।

नागा, कबुई तथा कूकी नृत्य मणिपुर के प्रसिद्ध नृत्य हैं। बाँस नृत्य कूकी-चिन नृत्यों की श्रृंखला में महत्वपूर्ण नृत्य है। इनके नृत्य लोक-नृत्य हैं। इन नृत्यों में भावों की अभिव्यक्ति, आँखों की भंगिमाओं तथा कमर की गति का सर्वथा अभाव होता है। नृत्य में हाथ हथेलियाँ, पाँवों की गति मात्र होती है। प्रत्येक जाति के अपने नृत्य हैं। तांखुल और माओ नागाओं का युद्ध नृत्य बहुत ही आकर्षक होता है।

अंत में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि मणिपुर के मैते लोग विशेष कला प्रेमी हैं और नृत्य-संगीत एवं उत्सव प्रियता उनके जीवन का अभिन्न अंग है। मणिपुर के पर्वतीय लोग भी नृत्य-गान में गहरी रुचि रखते हैं।

भाषा और लिपि

मणिपुर क्षेत्रफल की दृष्टि से बहुत ही छोटा राज्य है। जन संख्या भी चौदह लाख से कुछ ही अधिक है, परन्तु इसमें अनेक भाषाओं और बोलियों का प्रचलन है। इन भाषाओं में मणिपुरी जिसे स्थानीय भाषा में 'मैतेलोन' कहा जाता है, प्रमुख एवं सम्पर्क भाषा है। मणिपुरी भाषा-भाषी जन संख्या लगभग 2/3 है और शेष 1/4 लोग भी मणिपुरी भाषा बोलते हैं। वास्तव में मणिपुर की घाटी में बसने वाले मैते जन की भाषा मैते लोन या मणिपुरी है, जब कि पर्वतों में रहने वाले आदिवासियों की लगभग चालीस भाषाएँ हैं, जिनकी अनेक उप भाषाएँ और बोलियाँ भी हैं। पर्वतीय भाषाओं में प्रमुख है :—आइमोल, अङामी, अण्ड्रो, अनाल, कच्चा नागा, कबुई, कोम, कोराओ, कोरेङ (लियाङ), कूपोमे, खोइराओ, खाङोइ, खुरीकुल, ढाङते, चाइरेल, चिरु, चोथे, ताखुल, भादो (थादोइ), पाइते, पुरुम, फदाङ, मरम, मरिङ, माओ (सोपवोमा), मार, मियाङ, मोनासाङ, मोयोन, एलते, लाभङाङ, लुशाई, वाईफे, शान, साथे, सिमते सेङ्मई, सेमा, हिरोइ लाभङाङ आदि। इन भाषाओं के अतिरिक्त भारत के विभिन्न भागों की भाषाएँ व बोलियाँ भी मणिपुर में प्रचलित हैं, जिनमें, बगला, राजस्थानी, मैथिली, भोजपुरी, पंजाबी, असमी, आदि प्रमुख हैं। ये सभी भारतीय भाषा-भाषी लोग मणिपुर में मिलते हैं, जो परस्पर संवाद एवं सम्पर्क हेतु अपनी-अपनी मातृभाषा का प्रयोग करते हैं। अंग्रेजी और नेपाली दो विदेशी भाषाओं का भी यहाँ प्रचलन है तथा दोनों भाषाएँ स्नातक स्तर तक पढ़ाई जाती हैं। हिन्दी यहाँ अपनी विभाषाओं मैथिली व ब्रज के रूप में मध्य-

काल से धार्मिक कार्यों में प्रयुक्त होती है। राजनैतिक कारणो से भी संस्कृत व परवर्ती भाषाओ का यहाँ प्रचलन रहा है। हिन्दी का मणिपुर मे 1925 ई० से आज तक स्वैच्छिक संस्थाओ द्वारा प्रचार प्रसार हो रहा है। कक्षा तीन से आठ तक यहाँ पाठशालाओ मे हिन्दी अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। अभी पिछले कुछ वर्षों से कक्षा तीन के स्थान पर कक्षा छ से हिन्दी पढाई जा रही है, परन्तु पुनः कक्षा तीन से पढाई जाने का निर्णय हो चुका है जो 1988 जनवरी से लागू होगा। हाई स्कूलो व पाँच कालेजो मे हिन्दी वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाने की व्यवस्था है तथा विश्व-विद्यालय में बी ए कोर्स, एम ए एम फिल तथा हिन्दी शोध की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। यद्यपि मणिपुर की भाषाओ के सम्बन्ध में विद्वानो का मत है कि ये सभी भाषाएँ तिब्बति-बर्मी समूह के उपकुल कूकीचिन की भाषाएँ है, किन्तु वर्षों से आर्य भाषाओ के संपर्क मे आने के कारण इनमें आर्य भाषा के शब्द समूह का प्रचलन है, यद्यपि दोनो भाषा परिवारो की प्रवृति में अत्यधिक अन्तर है।

मैतै भाषा के मूल के सम्बन्ध मे विद्वानो के एक वर्ग का मत है कि यह भाषा संस्कृत से निकली हुई आर्य भाषा है। हाडसन, डब्लू, यमुजाओ तथा अतोम बापू शर्मा इस मत को मानने वालो में प्रमुख हैं और उन्होने संस्कृत व्याकरण से मैतै भाषा के व्याकरण की समानता के उदाहरण दिए है, साथ ही शब्दों की व्युत्पत्ति का भी उल्लेख करके मैतै भाषा के शब्दो की संस्कृत से उत्पत्ति दिखाई है। किन्तु डा० उत्पति ग्रियर्सन तथा सुनीति कुमार चटर्जी इनके मत से सहमत नही हैं।

सम्प्रति मणिपुर में अनेक भाषाएँ प्रचलित है। संविधान की आठवी सूची मे दी गई भाषाओं के असमी, बँगाली, गुजराती, हिन्दी, कन्नड, कश्मीरी, मलयालम, मराठी तमिल, तेलुगु, उर्दू, उडिया के बोलने वाले भी मणिपुर राज्य मे रहते हैं। इन भाषाओ के अतिरिक्त अन्य भाषाएँ जैसे—विष्णु प्रिया, चीनी, इंगलिश, गोरखाली (नेपाली), मणिपुरी, तथा त्रिपुरी भाषा बोलने वाले भी मणिपुर में रहते हैं।

मणिपुर मे जनजातीय भाषाओ

अदि, अहामी, बोदो, मार, बबुई, खासी, कुकी, लोथा, लुशाई (मिजो), माओ, मिकिर, मिशमि, नागा, पाइटे, सेमा, तांखुल, यादो, वाइफे आदि भाषाएँ बोली जाती है। मणिपुर की लगभग 96 प्रतिशत जनसख्या स्थानीय बोलियाँ बोलती है। यहाँ एक प्रतिशत हिन्दी भाषी तथा 1/4 प्रतिशत बगला भाषी हैं।

प्रदेश की 18 जनजातीय भाषाओ के अतिरिक्त भी अन्य जनजातीय भाषाए' भी हैं, जिनकी सख्या अभी निर्धारित नही की जा सकी है।

आकार एव जन सख्या की दृष्टि से यह छोटा सा राज्य है किन्तु इन भाषाई विविधता के होने पर भी सभी लोग भावात्मक एकता मे जुड़े हैं। मणिपुरी भाषा अन्तर प्रान्तीय भाषा है क्योंकि यह असम में तथा त्रिपुरा राज्यो मे भी बोली जाती है। साथ ही यह अन्तराष्ट्रीय भाषा भी है क्योंकि यह बर्मा व बंगला देश में बोली जाती है।

लिपि—

जनजातीय भाषाओं की अपनी भाषा लिपि नही है। अंग्रेजो के आने के बाद इन भाषाओ के लिए रोमन लिपि अपनाई गई है।

मैतै भाषा प्राचीन है और इसकी लिपि भी रही है जिसको 'मैतै मयेक'' कहा जाता रहा है। पौराणिक कथा के आधार पर अत्या गुरु सिदबा ने सृष्टि के बाद में अपने पुत्र पाखड्बा एव सनामही को मैतै भाषा और सिदबा ने सृष्टि के बाद मे अपने पुत्र पाखङ्बा एव सनामही को मैतै भाषा और लिपि में शिक्षा दी थी। अत मैतै भाषा व लिपि सृष्टि के साथ ही जन्मी है। किन्तु कुछ लोगो की मान्यता यह भी है कि मणिपुर म लिपि नहीं थी। लोग ईश्वर की प्रार्थना करते थे और वे प्रार्थनाएँ उनको स्मरण थी। प्रार्थनाओ के अतिरिक्त लिखित साहित्य नही था।

मैतै मयेके (मणिपुरी लिपि) के उद्भव, प्रकृति और वर्ण सख्या के सम्बन्ध

मे विद्वानो में गहरा मतभेद है। जी. एच. डामन (G.H. DAMAND) इसका उद्भव 1700 ई0 तो टी0 सी हडसन 1540 ई0 मानते हैं। 'चैथारोल" कुम्बाबा के अनुसार खगेम्बा (1598-1652) के समय मणिपुर में लिपि का प्रचलन हुआ था। किन्तु कुछ पंडित लोग राजा कियाम्बा के खोइबु के शिलालेख (1467-1508) के आधार पर इसका उद्भव कियाम्बा के समय मे मानते हैं। किन्तु यदि युमजाओ सिंह के फेयेङ ताम्रपत्रों को प्रामाणिक मान लिया जाए तो इसका उद्भव खोङतेकचा नामक राजा के शासनकाल 773 ई0 से मानना होगा। युमजाओ के अनुसार मैतै मयेक का प्रचलन पाखङबा के शासनकाल 33 ई0 से हुआ। डा0 कालिदास नाग इसका उद्भव सम्राट अशोक के शासन काल से पूर्व मानते हैं।

'मैतै मयेक" मे वर्णों की सख्या 18 थी जिसमे 'अजि' वर्ण भी था जिसका न उच्चारण होता था न इसका प्रयोग ही मिलता है। राजा जय सिंह उर्फ भाग्यचन्द्र के शासनकाल 18वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे यह सख्या 35 हो गई। स्वर एव मात्राएँ तथा ग, घ, ज, झ, भ, ध, द, ब, र, ण और श वर्ण इसमें बाद मे मिलाए गए हैं। "अजि" का प्रयोग 'ऊं' 'श्री' आदि के स्थान पर मगल चिह्न के रूप मे किया जाता है। स्वर न होते हुए भी मात्राएँ थीं जिनका प्रयोग लिखते समय 'इ' की मात्रा व्यजन के दाहिने और बाकी सभी मात्राएँ बाएं ऊपर या नीचे लिखी जाती थी। कुछ विद्वान यह भी कहते है कि अ, इ और उ स्वर मणिपुरी के 18 वर्णों मे सम्मिलित थे।

लेखन कला का इतिहास

निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि मणिपुर मे लेखन एव लेखन सामग्री का प्रयोग कब से हुआ। परन्तु विद्वानो की धारणा है कि मणिपुर मे लेखन कला शताब्दियों से प्रचलित रही है तथा कागज, कलम और और स्याही का प्रयोग होता रहा है। मैतै भाषा मे कागज को 'चे' और स्याही को 'मुक' कहा जाता है, ये दोनों शब्द चीनी भाषा के माने जाते हैं। उत्तरी बर्मा के शान लोगो ने चीन से कागज बनाना सीखा होगा और उनसे मणिपुर के लोगो ने। यह अनुमान विद्वानो ने इन आगत शब्दो के अधार पर किया है। स्याही दीपक की कालिख से और कलम बास से बनाई जाती थी। दूसरे मत के अनुसार मणिपुर के व्यापारी चीन के साथ बर्मा—चीन सीमा तक व्यापार के

लिए जाते थे और गाड़े हुए धन और स्वर्ण-चाँदी के प्राप्त हुई होंगी।

विद्यार्थी लिखने के समय एक लकड़ी की तख्ती का प्रयोग करते थे जिसको 'फारबाक' कहा जाता था। एक लकड़ी पर मिट्टी का लेप करके लकड़ी के टुकड़े से लिखने का अभ्यास किया जाता था। पुस्तकें केवल हाथ से लिखी जाती थीं। उसके बाद पुस्तकों का पुनर्लेखन होता था, जिसको 'कोइरेङ' कहा जाता था और पुस्तकों को कपड़े में लपेट कर रखा जाता था।

मणिपुरी मौलिक साहित्य का उद्‌भव सृष्टि से माना जाता है। सं० 33 ई० पाखङबा के राज सिंहासन पर बैठने का वर्णन 'लाइसराफाम' नामक ग्रंथ में किया गया है। जिसमें सूर्य देवता की पूजा से सम्बन्धित एक गीत उद्धृत किया गया है, जिसको 'ओगरी' कहा जाता है। पाखङबा के राज्य काल में ही गद्य-[illegible] में कविताएँ और बाद में कहा-[illegible]

मैतै पद्य

सं० 663 ई० में महाराज नाओथिङखोङ के समय सोगोन कुयम्बा नामक कवि हुआ, जिसने 'चकपा-रोल' नामक रचना की। इसमें युग निर्माण की बातें लिखी गई हैं। 'नूमित काप्पा' (सूर्य का शिकार) नामक एक रचना अत्यन्त प्राचीन मानी जाती है, जिसका पाठ थाओथिङफाङ (264-364 ई०) नामक राजा के सम्मुख पेना की संगत पर किया गया था। यह बात तूहेइलोन नामक ग्रंथ में मिलती है। दूसरी भक्ति परक रचना 'सनालमोक' मानी जाती है जो चन्द्र देवता (पाखङबा) को सम्बोधित की गई है। इस पुस्तक (सनालमोक) [illegible] मिलता है। "खोइबु खोक [illegible] सिन्योम' नामक पुस्तक में मिलता है।

"हिजन हिराओ" नामक लम्बी वर्णनात्मक कविता राजा इराकोंथबा (568-658 ई०) के समय लिखी गई थी। इसमें नौका प्रतियोगिता का व

लिए जाते थे और उन्हें कागज और स्याही उन्हीं से प्राप्त हुई होगी ।

विद्यार्थी लिखने के समय एक लकड़ी की तख्ती का प्रयोग करते थे जिसको 'सोरवाक' कहा जाता था । एक लकड़ी पर मिट्टी का लेप करके लकड़ी के टुकड़े से लिखने का अभ्यास किया जाता था । पुस्तकें केवल सामन्त रखते थे । उनके पास पुस्तकों का पुस्तकालय होता था, जिसको कोरबंब कहा जाता था और पुस्तकों को कपड़े में लपेट कर रखा जाता था ।

प्राचीन साहित्य

मणिपुरी मौखिक साहित्य का उद्भव सृष्टि से माना जाता है। स० 33 ई. मे पाखङबा के राज सिंहासन पर बैठने का वर्णन' लाइसराफाम' नामक ग्रंथ में किया गया है। जिसमें सूर्य देवता की पूजा से सम्बन्धित एक गीत उद्धृत किया गया है, जिसको 'ओगरी' कहा जाता है। पाखङबा के राज्य काल में ही गद्य-पद्य मौलिक रचना आरम्भ हो गई थी। शुरू मे कविताएँ और बाद में कहानियाँ लिखी गई। उस समय दो प्रसिद्ध कवि भी थे।

मैतै पद्य

स. 663 ई0 में महाराज नाओथिङखोङ के समय लांगोन कुरम्बा नामक कवि हुआ, जिसने 'चकपा-रोल' नामक रचना की। इसमें युग निर्माण की बातें लिखी गई हैं। 'नूमित काप्पा' (सूर्य का शिकार) नामक एक रचना अत्यंत प्राचीन मानी जाती है, जिसका पाठ थाओथिङफाङ (264-364 ई0) नामक राजा के सम्मुख पेना की संगत पर किया गया था। यह बात तूतेङलोन नामक ग्रंथ मे मिलती है। दूसरी भक्ति परक रचना 'सनालमोक' मानी जाती है जो चन्द्र देवता (पाखङबा) को सम्बोधित की गई है। इस पुस्तक (सनालमोक) का उल्लेख नाओथिङखोङ फमबनकाप्पा या गावा मे मिलता है। 'खोइजू लोक' नामक कविता ग्रंथ के पाठ का वर्णन ओइयुम्बा सिन्योम 'नामक पुस्तक' मे मिलता है।

"हिजन हिराओ" नामक लम्बी वर्णनात्मक कविता राजा इराकोपथोबा (568-658 ई0) के समय लिखी गई थी इनमे नौका प्रतियोगिता का वर्णन है।

"लोइयुम्बा सिन्योम" नामक ग्रंथ को मणिपुर का पुराण माना जाता है, जिसमें प्रत्येक परिवार के अधिकार एवं कर्तव्यों का वर्णन है। राजा से प्रजा तक के कर्तव्यों की व्याख्या है। लोइना सिलूलेन' भी इसी वर्ग की दूसरी रचना है। इन गाथाओं के रचयिता के नाम मदिगोल कुछ लोगों ने माना है।

बारहवीं शताब्दी से वर्णनात्मक लोकगाथात्मक काव्य की रचना आरम्भ होती है। 'माइराङसाइओन या सायोन (माइराङ अवतार) में सात अवतारों की कथाएं हैं, जिनका आधार ऐतिहासिक भी है। 'खम्बा-थोईबी" नामक अन्तिम अवतार की प्रेम कथा दुखान्त है। यह लोक गाथा महाकाव्य की गरिमा युक्त है। परिवर्ती काल में भी खम्बा थोईबी को लेकर अंग्रेजी, मणिपुरी व हिन्दी में अनेक नाटक, कथा, काव्य आदि लिखे गए किन्तु इनमें से श्रेष्ठ और महान है मणिपुर के महाकवि हिजाम अडाहनबाल "खम्बा थोईबी महाकाव्य" जिसमे 39000 पंक्तियाँ है। प्रो एन तोम्बी सिंह द्वारा अंग्रेजी भाषा में लिखा गया ग्रंथ खम्बा थोईबी भी बहुत बड़ा है। श्रीमती विमला रैना ने भी अंग्रेजी में खम्बा-थोइबी काव्य की रचना की है। श्री काला चाँदसिंह ने खम्बा थोइबी कथा हिन्दी गद्य में लिखी जब कि श्री सी एच निशानसिंह ने नाटक की रचना की है।

बारहवीं शताब्दी में अहोङलोनि और निङथोलोल नामक लोक काव्यों की रचना हुई जिनमें शौर्य एवं वीरता का वर्णन है।

"लँरोल" नामक लगभग 50 कविताओं का संग्रह सत्रहवीं शताब्दी की रचना मानी जाती है। इस काव्य ग्रंथ में फूलों के सौंदर्य और क्षणभंगुरता का वर्णन है।

लाइहराओबा नृत्याभिनय पर्व त्योहार में खोंखुलबेश में एक युवक द्वारा एवं युवती द्वारा जो गीत गाए जाते है उनमें हास्य विनोद, रसात्मकता और अलंकारिकता की प्रधानता है। इन गीतों मे भाव गांभीर्य है।

"मोइराङ सेइयोन" नामक काव्य शृंखला को लोक गायक शताब्दियों से पेना व ढोलक पर गाते आए हैं। इस प्रकार ये काव्य लोक गाथाओं के रूप में आज भी जनता की सम्पत्ति हैं। पोमबिरोन सेकनिङ तथा 'पुदिल' नामक गद्य-रचनाओं में उदाहरण स्वरूप जहाँ पद्यांश आए हैं, वे उत्कृष्ट काव्य उदाहरण हैं।

"पाओसा" लोकगाथात्मक कृति में तत्कालीन जीवन पर व्यंग किया गया है और हास्यपूर्ण रचना है।

मणिपुरी जनता गीत-संगीत प्रिय है। मैतै कविता में इसलिए संगीतात्मकता अनिवार्य तत्व है, साथ ही उसमे इस धरती की सुन्दरता, ताजगी और सुगन्ध मिश्रित है। यहाँ की जनता की उत्सव प्रियता का अन्यत्र उल्लेख किया गया है। विभिन्न उत्सवों के अवसर पर प्रकृति की गोद में पलने वाले जन-मानस का हर्षोन्माद, विरह व्यथा, भावनाएँ अनुभूतियाँ और परम्पराएं हृदय से गीति काव्य के रूप में युगो-युगों से छलकी है और लोकगीतो के रूप में यह काव्य आज भी जनता की विरासत में प्राप्त धरोहर है। कभी इन गीतो के माध्यम से देवताओ को प्रसन्न किया गया है तो कभी बदलते प्राकृतिक परिवेश के साथ अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त किया गया है। ये लोक गीत खुलङ्ईशै, कुमदाम ईशै, नाओसुम ईशै, लोता ईशं आदि विभिन्न रूपो में प्रचलित रहे हैं। प्रेम, विरह, भक्ति, प्रकृति आदि से सम्बन्धित ये लोकगीत जनता की मौखिक सम्पत्ति है।

मैतै गद्य

एक ओर जहाँ काव्य की अति प्राचीनकाल से एक सुदीर्घ परम्परा रही है, वही गद्य साहित्य की भी। आठवी शताब्दी मे फयेङ ताम्रपत्र जो खोङतेकचा ने जारी किए थे, वे मणिपुरी गद्य की प्रथम उपलब्ध रचना है। इसका शीर्षक 'शिवबु फङननबा लाइरिक "अर्थात शिवजी से मिलने का ग्रथ। 'ओउम श्री खौंगा असिरमा रिं स्वाहा। "नामक मत्र को शिव प्राप्ति का साधन बताया गया है। इन्ही ताम्रपत्रो मे श्री हरि, विष्णु, गणेश आदि देवी-देवताओ के नाम दिए गए हैं। इसमें 363 देवी-देवताओ का उल्लेख है।" पोइरतोन खुनथोकपा ग्रंथ एक गद्य-रचना को तीसरी शताब्दी की रचना माना जाता है।

दसवी शताब्दी के करीब नोङपोक निङथौ और पान्थोइबी की गद्य कथा भी प्रचलित कथा रही है। पान्थोइबी खोङ्गुल "गद्य-रचना को 12वी शताब्दी को माना जाता है। यह परकीया प्रेम की और नारी के समर्पण भाव को प्रकट करने वाली रचना है। नोङपोक निङथौ शिवजी के और पन्थोईबी पार्वती के अवतार के रूप में चित्रित किया गया है।

"खोमजोम नुबी नुङारोन" पोइरतौन खुनथोकपा के बाद की रचना

मानी जाती है जिसमें दो कथाएँ हैं। प्रथम कथा में लुवाङ्ग वंश की ■ लड़कियों तथा उनके प्रेमियों का सोरारेन (देवों का देव इन्द्र) की इच्छा से आकाश में नक्षत्र बनने का तथा द्वितीय कथा में एक लड़की को विमाता द्वारा दुःख दिए जाने पर देवताओं ने उसको झींगुर बना दिया। इस कथा में क्षत्रिय सुमेरु आदि संस्कृत तो का बर्मा, तथा फुरा श्यामी (थाईलैंड) शब्दों का प्रयोग भी हुआ है।

"खुड़चान पौम्बी लुवाओबा" नामक ग्रंथ में एक प्रेमी की कथा है, जिसने अपनी शक्ति और बल से अपनी मृत प्रेमिका को देवताओं से पुनर्जीवित करवाया।

1195 से 1231 ई० की एक रचना उपलब्ध है जिसका शीर्षक "नायनरोल" है, जो वीरगाथात्मक रचना है।

ऐतिहासिक एवं वंशावली ग्रंथ

मणिपुरी साहित्य में बहुत पुराने समय से 'निङथौरोल' अर्थात राजाओं की कथायें गद्य में लिखने की परम्परा रही है। मणिपुर राजवंश की ऐतिहासिक घटनाओं तथा वंशावली का विवरण गद्य—ग्रंथों में मिलता है। इनमें प्रमुख निम्न ग्रंथ हैं।

चौथारोल कुम्बाबा

मणिपुर के राजवंश का हस्तलिखित ग्रंथ है जो नोङ्दा लाइरेन पाखङ्बा सं० 33 ई में सिंहासन पर बैठने से आरम्भ होता है। यह 'मैतै मयेक' या मणिपुरी लिपि में लिखा जाता रहा है। यद्यपि इस लिपि का प्रयोग 1709 के आसपास बन्द कर दिया गया किन्तु चौथरोल कुम्बाबा की लिपि मणिपुरी ही रही है। 1560 तक की घटनाओं का इसमें संक्षिप्त वर्णन है तथा प्रमुख घटनाओं का उल्लेख ही मिलता है। किन्तु बाद की घटनाओं का विस्तृत वर्णन हुआ है। सूर्य-चन्द्र-ग्रहण, भूकम्प, महामारी, बाढ़, अकाल, आक्रमण, विजय पराजय, राजाओं की वंशावली, पर्व, त्यौहारों का प्रचलन आदि न जाने कितनी ही बातें चैथरोल कुम्बाबा में वर्णित है। यह मणिपुर का राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक इतिहास है। इसमें प्रारम्भ में केवल वर्षों का उल्लेख था, किन्तु बाद

में खडेम्बा राजा (1598-1652) के समय से इसमे महीने और तिथियो का भी उल्लेख किया गया। वास्तव मे चैथरौल कुम्बाबा का अर्थ वर्षो का विवरण या इतिहास है। अत प्रारम्भ मे केवल वर्षो का ही उल्लेख है। वर्ष शकाब्द मे दिए गए हैं। कहा जाता है कि यह एक बार खो गया था। 1780 ई मे महाराजा भाग्यचन्द्र के समय पुन लिखा गया था।

'चिङ्थोरौल लम्बुबा" नामक दूसरा राजवश का ग्रथ है, जो मणिपुर के इतिहास का सहायक है। यह कवित्वमय भाषा मे लिखा गया है। इसमे घटनाएँ दी गई हैं, किन्तु वर्ष नही। चैथरौल कुम्बाबा से इसमें घटनाओ का उल्लेख अधिक विस्तार से मिलता है। राजाओ-रानियो के चरित्र-चित्रण भी है, विजय पराजय की घटनाएँ तथा राजाओ की यात्राओ का वर्णन भी इसमे मिलता है।

मोइराङ निङथौरौल लम्बुबा, खुमन कड्लैरौल, लुवाङ्लोल, अङोमलोल, चैङ्लैरौल आदि ग्रथो मे भी मोइराङ, खुमान, लुवाङ तथा चैङ्लै वशो का वर्णन मिलता है।

'नाओथिङखोङ फमबाल काबा" में राजा नाओथिङखोङ (663-763) के विवाह और राज्य का वर्णन है। "ताखेल डाम्बा" (त्रिपुरा विजय) मे गरीब निवाज (1709-48) की विजय का वर्णन है। "सम्सोकङाम्बा" में सामजोक नामक शान राज्य (बर्मा) की विजय का विवरण है।

"चिङथङ खोम्बा गगा चत्पा, (भाग्यचन्द्र की गगा यात्रा) प्रसिद्ध यात्रा ग्रन्थ है जो 1798 के बाद लिखा गया है "खाटटो या खागी डम्बा" नामक ग्रन्थ मे महाराजा गभीर सिंह की खासी पहाडियो पर विजय का वर्णन है। "जिला दरबार" मे महाराजा चन्द्रकीर्ति का 1874 मे गवर्नर जनरल लार्ड नार्थ ब्रुक से मिलने का उल्लेख है।

'बामोन खुन्योकलौन" म ब्राह्मण आव्रजन का इतिहास है। इसी श्रेणी की रचनाएँ है—चिङग्रेम्बी खोङ लुप (चिङगुरेम्बी के सहयात्री), खैग्रिलौन लाईरिक येङबमलोन, मयाङ तेखाओलोन, नोङ्पोक हारम ओर नोङ्चुप हारम। इनमें पूर्व एव पश्चिम से आने वाले आव्रजको का वर्णन है। किन्तु इन पुस्तको का समय निश्चित नही है और गरीब निवाज के शासनकाल के

आस-पास मे लिखी गई बताई जाती हैं।

मणिपुर के दरबार मे अमाइबालोइसङ (अर्थात राज्य दरबार का विद्वान विभाग) द्वारा वशावलियों तथा पुस्तको के लिखने की तथा सुरक्षित रखने की परम्परा रही है। "युमदाबा पुया" नामक ग्रन्थो मे मणिपुर की विभिन्न सलाइ या वशो का इतिहास दिया गया है। 'युमदाबा पुया' प्रत्येक वश के मुखिया के पास रखे गए इनमे आज तक प्रत्येक वश मे जन्म और विवाह की बाते लिखी जाती हैं।

व्रत, पर्व-त्योहार, सस्कारो, तन्त्र-मन्त्र, औषधि, ज्योतिष आदि से सबधित ग्रथ मणिपुरी साहित्य भण्डार की अपूर्व निधि है। शिथिका व लेचिलोन नाम के दो ग्रथ ज्योतिष ग्रन्थ है। हिदाकलोन और योबारोन औषधि सम्बन्धी पुस्तकें हैं। इनके अतिरिक्त भी ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तको की पांडुलिपियाँ उपलब्ध हैं। इन ग्रन्थो की प्राचीनता सदिग्ध होते हुए भी मणिपुर के इतिहास एव सस्कृति मे महत्वपूर्ण स्रोत है। इनके रचयिता भी अज्ञात हैं, क्योकि ग्रथ अमाइबा लोइसङ विभाग मे पडित या ओझा झोपडी में लिखे जाते थे। "लालुप" प्रथा के अन्तर्गत लिखे जाने के कारण भी लेखकों के नाम नही दिए गए। ये ग्रन्थ अगर के पेड़ की छाल पर लिखे गए हैं। मणिपुर में ताडपत्र पर लिखे ग्रन्थ नही मिलते हैं।

मणिपुर की साहित्य धारा

उपलब्ध सामग्री के आधार पर पद्य एवं गद्य साहित्य का विवेचन किया गया है। साहित्य की धारा के प्रवाह मे अचानक गतिरोध उत्पन्न दिखाई देता है। सम्भवतः ससार के इतिहास मे यह एक मात्र अनूठा उदाहरण है। जब कोई देश पराजित हो जाता है तो उसके भाषा साहित्य के प्रवाह को आघात लगता है, किन्तु मणिपुरी भाषा साहित्य को बिना किसी पराजय के यह आघात झेलना पड़ा है। यह अनूठी घटना अट्ठारहवी शताब्दी के आरम्भ में घटित हुई।

महाराजा पामहैबा उर्फ गरीब निवाज 1709 ई में मणिपुर के सिंहासन पर बैठे। गरीब-निवाज एक योग्य शासक और योद्धा थे। उन्होने एक सुदृढ घुड़सवार सेना का संगठन किया और बर्मा को तीन बार पराजित किया। उन्होने त्रिपुरा पर भी विजय प्राप्त की तथा नागा गाँव भी जीते थे। उन्होंने एक ओर युद्ध के मैदान मे अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन किया तो दूसरी ओर उन्होने धर्म के क्षेत्र मे क्रांतिकारी काम किए थे। वे महान भक्त थे। उनकी निष्ठा वैष्णव धर्म के देवी-देवताओ के प्रति भी थी तो मैतै धर्म के "लाई" या देवताओ के प्रति भी। राम जी प्रभु का मन्दिर बनवाने के साथ काली मन्दिर व कृष्ण मन्दिर भी बनवाए। उन्होने एक बड़ी पोखरी बनवाई, 'लाई' मन्दिर भी बनवाए और हनुमान जी का मन्दिर भी बनवाया। 'लाइवा हैबा' नामक स्थानीय देवता के मन्दिर बनवाने, उनका पालकी पर जलूस निकालने आदि घटनाओ का भी वर्णन है। यह भी कहा जाता है कि उन्होने 'लाई' मन्दिरो को तुड़वाया था। उन्होने निम्बार्क, मध्वाचार्य, रामानन्दी एव "गाडीय" वैष्णव भक्ति में दीक्षा ली। शांतिदास अधिकारी नामक रामानन्दी धर्म प्रचार के प्रभाव में आकर उन्होने मैतै पुराण ग्रथो को जलवा दिया। उन्होंने वैष्णव

आधुनिक साहित्य

प्राचीन काल एवं मध्यकालीन मणिपुरी साहित्य में सर्वेक्षण के पश्चात् आधुनिक साहित्य के इतिहास का अवलोकन किया जाए। मणिपुरी साहित्य की अवरुद्ध धारा बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से पुन फूट पड़ी। वास्तव में 1891 की मणिपुरी क्रांति के तुरन्त बाद ही मातृभाषा में साहित्य रचना की दुरदमनीय भावना भड़क उठी थी। इस आंदोलन के अगुआ कुछ यूरोपीय और स्थानीय लोग थे, जिनमें प्रमुख थे—पेटिग्रयुम महोदय विल्स, रामसुन्दर राय, मकर सिंह, मुनाल सिंह, जलीश्वर सिंह, बांके बिहारी, गोकुलचंद और हु चैतन्य सिंह। मणिपुर साहित्य रचना के इस आन्दोलन को सर चूरा चांद सिंह मणिपुर के महाराजा (1891-1941 ई०) का संरक्षण भी प्राप्त हुआ। 1890 ई में मणिपुरी भाषा की पहली पुस्तक 'मणिपुरेर इतिहास" शीर्षक से छपी।

बीसवीं शताब्दी से अब तक लगभग नब्बे वर्ष में मणिपुरी भाषा साहित्य का विकास प्रशंसनीय है। प्राचीन साहित्यिक ग्रंथों का सम्पादन किया गया और विविध साहित्यिक विधाओं की रचनाएं की गई, अनुवाद हुए, इतिहास, भूगोल ज्ञान, विज्ञान, संस्कृत, कलाओं आदि पर अनेक ग्रंथ लिखे गए। वास्तविकता यह है कि मणिपुर की धरती कलाओं के लिए उर्वरभूमि रही है। साहित्य रचना न होने पर भी विभिन्न ललित कलाओं एवं उपयोगी कलाओं की साधना तो हो ही रही थी और उन कला क्षेत्रों में नित्य नए प्रयोग हो रहे थे। नृत्य और संगीत के क्षेत्र में मणिपुर ने अद्भुत प्रगति की है। कला की साधना परम्परा और परिष्कृत जन रुचि तो थी ही, अतः अवरोध हटने के साथ श्रेष्ठ साहित्य सृजन आरम्भ हो गया है।

डा. आई आर बाबूसिंह जो आधुनिक मणिपुरी साहित्य के विशेषज्ञ एव स्थापित आलोचक माने जाते हैं। उन्होने आधुनिक मणिपुरी कविता को दो भागो मे विभक्त किया है। डा कमल व उसके समकालीन तथा अत्याधुनिक कवि जिन्होने समकालीन जीवन को स्वर दिया है। डा सिंह के मतानुसार इन दोनो वर्ग के कवियो मे दृष्टिकोण, शैली और तकनीक में अन्तर है। प्रथम वर्ग में गीति तत्व के साथ मणिपुर के प्रति असीम प्रेम की अभिव्यक्ति है। वर्षों के अन्तराल के पश्चात इन कवियो की कविता की तुलना उषाकाल मे चिड़ियो की चहचहाट से की है जब कि उनका कहना है कि नए युग के कवियो मे आधुनिक जीवन की धारा, टूटते विश्वास एव सत्रास आदि के प्रति जागरूकता है।

डा कमल 'समाबम' आधुनिक मणिपुर साहित्य के जन्मदाता है। कविता के क्षेत्र में भी अग्रणी रहे हैं। बीसवी शताब्दी के तीसरे दशक में उनकी 18 कविताओ का प्रथम काव्य सग्रह लै—यरेंग (पुष्प माला) शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। ये छोटी भावपूर्ण कविताएँ हैं। (वे प्रकृति के कवि थे और उनका दृष्टिकोण मानवतावादी था ।

स्व चोबासिंह का कविता सग्रह 'थायनगी'' दूसरा काव्य सग्रह है जिसमें मणिपुर के प्राचीन गौरव का गान है। तीसरे कवि हिजम अङाहल सिंह हैं जिन्होने खम्बा-थोइबी शैरेंग' महाकाव्य की रचना की इसके आठ खण्ड हैं और 39,000 पक्तियो का यह विशाल महाकाव्य है, जिसमें खम्बा थोईबी की पौराणिक गाथा को आधार बनाकर खम्बा—थोइबी के प्रेम का वर्णन है। अङाहल की कविताओ मे भी मणिपुर के प्राचीन गौरव का गान किया गया है। शौङ्लेन इन्दू में मणिपुरी जन जीवन को चित्रित किया गया है। यह एक प्रेम कथात्मक काव्य है। यह लम्बी वर्णनात्मक कविता है।

ह नवद्वीपचन्द्र सिंह का तोनुलाइजिहलेम्बी एक वर्णनात्मक कविता है। मोइराङ की पौराणिक कथा पर आधारित यह काव्य नियति की क्रूरता का चित्रण करता है। शंदाम शैरेंग ह. एरावत सिंह और शैरेंग अनोबा सी एच मयुरध्वज सिंह के गीति काव्य हैं। ए दारेन्द्र सिंह ने कस वध काव्य नामक प्रबन्ध काव्य की रचना की है। मोइराङ थोइबी' उनका महाकाव्य है,

जिसकी कथा मोइराङ की पौराणिक कथा पर आधारित है। मोइराङ की कथाओ पर आधारित सूरचाँद शर्मा के 'कवोलोइ' तथा 'लाजमा अनि' प्रबन्ध-काव्य है। राजकुमार शीतलजीतसिंह ने 'इखोलाइरा' तथा 'कतकी' काव्य लिखे। 'शातनिङबी' काव्य संग्रह राजकुमार सुरेन्द्रजीत सिंह द्वारा रचित है, जिसमे गीति तत्व तथा प्रतीकात्मकता की प्रधानता है। राजकुमार जलजीत सिंह की कविताओ मे भी यही प्रवृति है। एस नोदिया सिंह की कविताओ में वर्णनात्मकता और गेयता है। नीलवीर शर्मा शास्त्री की कविताओ मे मणिपुर के प्रति अगाध प्रेम व्यक्त हुआ है—'खोङ्जोम तीर्थ नामक वर्णनात्मक कविता मे उनकी राष्ट्रीय भावना दर्शनीय है। ख. इबोरस सिंह की थमोइ पाओदम मे एक निराश प्रेमी के विरहगीत हैं। स गोरकिशोर तथा राजकुमार एलाङ्बम ने भी ऐसी ही कविताओ की रचना की है। इस वर्ग के कवियो में ए मिनेकतन सिंह का कविता संग्रह वसन्त शेरेंग' सबसे भिन्न है। उनकी कविताओं को समझने के लिए मणिपुर की पौराणिक गाथाओ का ज्ञान आवश्यक हो जाता है।

आधुनिक कवियों में एल समरेन्द्र सिंह प्रमुख है। इनकी प्रतिभा और भाषा प्रयोग की तुलना किसी अन्य कवि से नहीं की जा सकती। 'आ अमना हाइगे तेलगा तथा 'ममाङ लैकाई थम्बाल सत्ले' नामक उनके काव्य संग्रह दृष्टिकोण भाषा शैली विषयवस्तु और तकनीक की दृष्टि से नवीनता युक्त है। व्यग इतना पैना है कि पाठक के हृदय पर गहरा प्रभाव डालता है। ए नीलकान्त सिंह, के. पद्मकुमार, श्री बीरेन और टी एच. ईबोहल सिंह, कोंगजम इबोहल सिंह आदि भी इस वर्ग के कवि हैं।

तरुण तथा बाद के कवि समकालीन जीवन की विडम्बना, वैषम्य, आक्रोश, सन्त्रास, व्यर्थता असहाय अवस्था जैसी भावनाओ को अभिव्यक्त कर रहे हैं। वे विद्रोही हैं प्राचीन परम्परा और रुढियो को वे समूल नष्ट कर देना चाहते हैं। वे अति-यथार्थ वादी हैं जो जीवन का अर्थ तलाश रहे हैं। श्री बीरेन का काव्य संग्रह ' तोल्लबा" शादुगी वासल (गरीब पशु के विचार 1970) मे कवि ने प्रश्न उठाए हैं वह निर्माण के लिए पहले विध्वस के लिए प्रतिबद्ध है। दावी (दावा) मे वह स्वतन्त्र जीवन जीने के अधिकार मांगता है। टी एच. इबोपिशाक का काव्य संग्रह 'अपाइबा थवाइ' (भटकती आत्मा 1969) में कवि ने अपनी निराशा एव भ्रांति को स्वर दिया है जो युग बोध का परिचायक है।

इवोपिशाक का दूसरा काव्य संग्रह है "सन्देम्बी थोइरलो नाहुम पोनजेन साबिगे" (आओ स द्वेवी मे तुम्हारा घर बनाऊँगा 1972) बालकृष्ण, ज्योतिन्द्र घावोला, व्रजेश्वर आदि कवियो ने भी समकालीन परिस्थितियो को विविधता एव नवीनता के साथ अभिव्यक्त किया है।

इधर मणिपुर मे क्रोधी पीढी के कवि त्रय बहुत लोकप्रिय हुए हैं, उवोपिशाक, इवोमचा व रणजीत राजकुमार मधुवीर भी मणिपुरी आधुनिक कवि माने जाते है। उनके दो-तीन कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। शिङनाबा" (चुनौती) शीर्षक से इनके काव्य संग्रह दो खडो मे प्रकाशित हो चुके है। बुर्जुआ वर्ग के आडम्बर को छिन्न-भिन्न करने का आक्रोश इनकी कविताओं मे अभिव्यक्त हुआ है। नई कविता म भाषा, भाव, प्रतीको आदि की नवीनता है और यह प्रयोगात्मक है। विविधता से परिपूर्ण है।

संस्कृत से कालिदास, बगला से रवीन्द्र, हिन्दी से धर्मवीर भारती के अनेक काव्य ग्रन्थो का मणिपुरी भाषा मे अनुवाद हो चुका है।

उपन्यास

डा. कमलसिंह 'लमाबम' (मार्च 1899 से फरवरी 1934) के उपन्यास 'माधवी' से मणिपुरी साहित्य मे उपन्यास का जन्म माना जाता है। यह उपन्यास वर्तमान शताब्दी के तीसरे दशक की रचना है। इसमे डा कमल जो कवि भी थे, ने मणिपुर के प्राकृतिक सौन्दर्य का कवित्वमयी भाषा मे वर्णन किया है। स्वार्थ-त्याग, परोपकार मानव-सेवा जैसे उच्च आदर्शों को प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास का हिन्दी अनुवाद श्री सी एच निशानसिंह द्वारा किया गया है, जो उन्होने स्वय ने 1977 मे प्रकाशित किया है।

ख्वाइराकपम चाउबासिंह का ऐतिहासिक उपन्यास लबगलता (1940) मे प्रकाशित हुआ। महाराजा खगेम्बा (1597-1652 ई.) के राज्यकाल की राजनैतिक घटनाओ के साथ राजकुमारी और सिपाही की प्रेम कथा इस उपन्यास का आधार है।

राजकुमार शीतलजीत सिंह एक आदर्शवादी लेखक हैं, उनके उपन्यास रोहिणी (1941) थादोकपा बलिदान (1942) तथा इमा (माँ 1947) मे प्रकाशित हुए हैं।

एच० अङाहल सिंह का उपन्यास 'जहेरा' एक हिन्दू प्रमी और प्रेमिका की कथा पर आधारित है जो उनकी मृत्यु के बाद 1960 में प्रकाशित हुआ।

एस० नोदिया चाँदसिंह ने चार उपन्यास लिखे हैं—गौर पूर्णिमा (1966), दे ओदान (1967), अमर कीर्ति (1968) और नोङपोकचिङखें थानबी (1970) आर० के० एलाङबम ने मरुप अनि (1950) में दो मित्रों की कथा लिखी है, जो अनाथ थे। हिजाम गुनोसिंह का उपन्यास 'समन' (ऋण) 1964 मे प्रकाशित हुआ, जिसमे मैत्री एव जनजातीय मित्रता का आदर्श रखा गया। (भेंट 1968), 'पाओदम' (अन्तिम सदेश 1971) और ऐखोइगी ताइा (हमारा बड़ा भाई 1972) 'बी० टी० रोड' तथा इस राज्य से मुझको पहचानने वाला एक व्यक्ति तो निकलना अच्छा है। उनके अन्य उपन्यास हैं। टी० इबोमचा के दो उपन्यास मोङफम (कब्र 1969) तथा मङलेनबाक (स्वप्नलोक 1970) प्रकाशित हो चुके हैं। के एच० इबोहलसिंह ने इमाना ऐइबु माहनबनी (मेरी माँ ने मुझे बिगाड़ा 1951) तथा ऐंदी ओक्त बिनी (मैं बंधया हूँ 1953) उपन्यास लिखे। टी थोइबी देवी ने राधा (1963) नुङसी इचेल (प्रेम विवाह 1965) तथा चिङदा सतपा इङल्लें पहाड़ पर मिलने वाला इङेल्ले (इङेल्ले एक फूल का नाम है) (शिखर पर पुष्प 1971) नामक तीन उपन्यास लिखे। सोइतोगबम पचा ने हजज (1960) तथा हयाद बेगम (1967) (1) नातौ-हिबा अहल अमा—नातायोबा 1969 एक बहरा वृद्ध) इम्फाल अममूङ इसिङ नुङसितकी फिबम (इम्फाल और मौसम की स्थिति 1972) अमोआबा पाओह (नई खबर 1973) तथा लम असिदा ऐइबु खङबा असतङदी थोरकपाफ (परिचय की तलाश 1974) आदि उपन्यास लिखे हैं। महाराज कुमारी बिनोदिनी देवी का ऐतिहासिक उपन्यास बोर साहबे ओङबी सनातोम्बी (बड़े साहब से ब्याही सनातोम्बी 1976) एक मणिपुर की राजकुमारी के बड़े साहब पोलिटिकल एजेंट से विवाह की दुखद कथा पर आधारित है।

श्री रामसिंह डा भाग्य (उपन्यास चौबी) एस. कृष्ण मोहनसिंह (वाङाङ-दाबा साक्षी मूक साक्षी) आदि उपन्यासकार हैं, जो मणिपुरी साहित्य के भण्डार को अपनी रचनाओं से समृद्ध बना रहे हैं। इधर लिखे जाने वाले उपन्यास के सम्बन्ध मे प्रो ए नीलकान्त सिंह ने लिखा है कि अनेक उपन्यास-कार नए व पुराने भी उपन्यास रचना कर रहे हैं किन्तु इनम गुणात्मकता का अभाव है।

अनुदित उपन्यास

श्री सी एच निशान सिंह ने गोदान, गबन, चित्रलेखा उपन्यासो का हिन्दी से मणिपुरी भाषा मे अनुवाद किया है। जैनेन्द्र के त्याग पत्र का अनुवाद डा ए. दीन मणिसिंह ने किया है। हिन्दी से मणिपुरी में उपन्यासो के अनुवाद से पहले बगला भाषा मे मणिपुरी मे अनुवाद किए गए हैं। डा आई. आर. बाबूसिंह के अनुसार बंकिमचन्द्र के उपन्यास कपाल कुडला का एम. कोइरार्इसिंह द्वारा सर्वप्रथम अनुवाद किया गया। ए श्याम सुन्दरसिंह ने शरत, बकिम व रवीन्द्र नाथ ठाकुर के बगाली उपन्यासो का अनुवाद किया। सूरचाँद शर्मा ने भी बगला से शरत चन्द्र एवं बंकिमचन्द्र के उपन्यासो का अनुवाद किया है। श्री कृष्ण मोहन शर्मा ने राजेन्द्रसिंह बेदी के उपन्यास एक चादर मैली सी का अनुवाद किया है।

कहानी

इस शताब्दी के तीसरे दशक से मणिपुरी भाषा मे कहानी रचना भी होने लगी। कहानी मणिपुरी भाषा की बहुत ही लोकप्रिय विधा है। प्रत्येक पत्र-पत्रिका मे कहानियो के प्रकाशित होने से इस बात का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। डा. आई. आर. बाबूसिंह के अनुसार मणिपुरी साहित्य मे अल्पकाल में लिखा गया कहानी साहित्य परिणाम और गुणात्मक दृष्टि से बहुत समृद्ध है। प्रो ए. नीलकातसिंह के अनुसार तीस के दशक मे पत्रिकाओ मे कुछ कहानियो का प्रकाशन हुआ किन्तु मणिपुरी कहानियो का प्रथम सग्रह 1946 ई. मे राजकुमार शीतलजीत सिंह रचित लेकोनुब्द (बगीचे मे) प्रकाशित हुआ। उनका दूसरा कहानी सग्रह लैनूग शी (प्रिय पुष्प) है। कहानियो मे लेखक का वही आदर्शवादी दृष्टिकोण रहा है जो उपन्यासो मे है। राजकुमार एलाडबम के दो कहानी सग्रह चिडयातमया' (पर्वत और मैदान 1956) तथा युम गी मो' (घर की बहू 1958) हैं, जिनमे ग्रामीण जीवन के भोलेपन एव प्रेम तथा शहरीकरण की प्रक्रिया का उल्लेख हुआ है 'थाईनगी मणिमुक्ता' आपका लोक कथा सग्रह है। श्री नीलबीर शास्त्री का कहानी संग्रह बसती चरोद (बासती पुष्प का गुच्छा 1967) मे निर्धन एव शोषित वर्ग की समस्याओं के प्रति सहानुभूति का भाव है और इन कहानियो पर हिन्दी कहानियो का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। के. एच प्रकाश का कहानी सग्रह है—इचे गी शाम (मेरी बहिन के केश) जिसमें निम्न मध्यवर्ग पर व्यग किया गया है।

एन कुन्ज मोहन सिंह एक मामुर कहानीकार हैं। इनकी कहानियों में जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है। कहानियां विविधता से परिपूर्ण हैं। इन्होंने मणिपुर ही नहीं मणिपुर से बाहर के परिवेश पर भी कहानियां लिखी हैं। चाय बागान, रेलवे स्टेशन, नागरिक जीवन और इम्फाल की राजधानी के साथ कृषक एवं मछुआरों के जीवन की कथा और दुःख दर्द को लेखक ने अपनी सशक्त लेखनी से छुआ है। चेनलिङ्बाइचेसा प्रवाह जो रुक गया 1955 तथा इलिशा आगामी माहाओ (एक हिल्सा का स्वाद 1973) नामक कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। दूसरे संग्रह पर इनको साहित्य अकादमी ने 1974 में पुरस्कार दिया है।

महाराज कुमारी विनोदिनी देवी का कहानी संग्रह नुङाइरक्ता चन्द्रमुखी चट्टान के बीच में चन्द्र मुखी पुष्प 1967 है। महाराज कुमारी की कहानियों में स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को परिवर्तित मान और मूल्यों के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है।

एन. श्री बीरेन के कहानी संग्रह—'लैंचिल लक्की थाजा' (बादलों के बीच में चांद 1967) में कहानीकार ने मध्यम वर्ग को बेनकाब कर दिया है। हि. गुनोसिंह का कहानी संग्रह 'फीजङ मरुदा' (पर्दे के पीछे 1969) सभ्य समाज की बुराइयों को बेनकाब करता है। डा ए. दीनमणि के कहानी संग्रह—मकलबी (मणि में डूबी महिमा), मोराम्बी अङोबी (मोराम्बी पगली) तथा 'पिस्तौल अमा कुन्दो लैई अमा (एक पिस्तौल, एक कुन्दो पुष्प) हैं। दीनमणि सिंह की कहानियों में परम्परागत और आधुनिक जीवन की विषमताओं पर प्रखर व्यंग है किन्तु हास्य मिश्रित। पाठक आपकी कहानियां पढ़ते समय हंसे बिना नहीं रह सकता है। राजकुमार मधुवीर को भी मणिपुरी, साहित्य का आधुनिक कहानीकारों के वर्ग में लिया जा सकता है। उनकी कहानियां ऋतु साहित्य आदि मणिपुरी पत्रिकाओं में बहुत प्रकाशित हुई हैं।

सत्तर के दशक से मणिपुरी कहानी में एक नया मोड़ दृष्टिगोचर हो रहा है युवा लेखकों ने 'मैरिक' (चिंगारी) कहानी द्विमासिक निकालना आरम्भ किया। इस युवा पीढ़ी के कथा साहित्य में घोर निराशा, आक्रोश तथा अस्तित्व के लिए संघर्ष की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। इनमें प्रमुख हैं सर्वश्री युमलेम-बाम इबोमचा, वीरमणि और प्रिय कुमार आधुनिक युग में मनुष्य की असहाय

अवस्था और हृदयहीनता के साथ युग की अशांति एवं अस्थिरता को भी स्वर दिया है। युग बोध और परिस्थितियों के प्रति ये नए कथाकार सजग हैं।

श्री केशाम कुंज बिहारी ने बैताल पच्चीसी (हिन्दी से) का मणिपुरी में 1960 में मणिपुरी में अनुवाद किया है। निशानसिंह ने प्रेमचन्द की पाँच कहानियों का शिङेल मडा शीर्षक से अनुवाद किया है। छत्र ध्वज शर्मा ने प्रेमचंद की सात कहानियों का संग्रह सप्त सरोज को 'धम्बाल तरेत' का शीर्षक से अनुवाद किया है। श्री ए कुमार शर्मा ने अनेक सुप्रसिद्ध हिन्दी कहानियों का मणिपुरी में अनुवाद किया है।

नाटक एवं एकांकी

मणिपुरी भाषा में लिखे गए नाटक एवं एकांकी रंगमंच से जुड़े रहे हैं। 1905 में वाबूपाड़ा (इम्फाल) में एक बंगाली नाटक 'पगली' का मंचन किया गया था। एस ललित सिंह का नाम मणिपुरी नाट्य एवं रंगमंच से जुड़ा है। वे स्वयं अभिनेता, निदेशक एवं लेखक थे जिन्होंने नाटक की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सो एच मयुरध्वज सिंह तथा एच एरावत सिंह ने भी मणिपुरी नाटक के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। इन प्रारम्भिक नाटकों का आधार मणिपुरी पौराणिक गाथाएँ थी। एल ललित सिंह का 'सती खोङनाङ', एल. एम. इबुङोहल सिंह का नरसिंह एवं मोइराङ थोईबी, ए दोरेन्द्रजीत सिंह का वीर टिकेन्द्रजीत सिंह' एम बीरासिंह का, 'चिङ खोङनाङ-थाबा', ओ थौर मंगलसिंह का, 'मैनू पेमचा', ए श्यामसुन्दर सिंह का, 'केगेलामजा', सूरचांद शर्मा का ये सब नाटक पौराणिक या ऐतिहासिक थे जिनमें राष्ट्रीय भावना अभिव्यक्त हुई है।

ए मिनेकेतन सिंह ने सीता वनवास नामक नाटक की रचना की जो रामकथा पर आधारित है।

किन्तु नाटक के क्षेत्र में दूसरा वर्ग आया जिससे समसामयिक जीवन की समस्याओं के आधार पर नाटकों की रचना की। इन नाटककारों में जी. सी तोङब्रा प्रमुख नाटककार हैं जो नाटक के माध्यम से समाज की आलोचना करते हैं और उसको नवीन विचारधारा प्रदान करते हैं। इनके नाटकों में बहुत ही पैना व्यंग होता है साथ ही हास्य की भी प्रधानता रहती है। उन्होंने नाटक ही नहीं एकांकी भी लिखे हैं। आज भी लिख रहे हैं। इनमें से प्रमुख हैं—शह

गथेत, इम्फाल चाइबी, मिन कोतन, मैट्रिक पास, मनि ममो, आदि। कोंगब्रम इबोहल सिंह ने भी नाटक एवं एकांकी लिखे हैं।

मणिपुरी भाषा में विभिन्न भाषाओं के नाटकों के अनुवाद भी किए गए हैं। सम्प्रति रंगमंच से रतन कुमार थियाम कोइरेंग मनखा दबोनोम्बी, कन्हाइ लाल यारेल्लानब ने अनेक प्रयोग किए हैं। कोरस मणीपुर ड्रामेटिक यूनियन, रूप महल आर्यन थियेटर, सोसायटी थियेटर जैसी अनेक संस्थाएं इम्फाल में हैं, जिनके पास अपने हाल हैं, जिनमें निरन्तर नाटकों का मंचन होता है।

वास्तव में नाटक मध्यकाल में नहीं लिखे गए, किन्तु नाटकों का अभिनय गुमाइलीला या और जात्रावली के नाम से होता रहा। ये लोक नाट्य परम्परा मणिपुर में खुले मैदान में शताब्दियों से प्रचलित रही है। इसलिए नाट्य-विधा यद्यपि साहित्यिक विधा के रूप में बीसवीं शताब्दी में विकसित हुई है तथापि लोकनाट्य परम्परा में वह अज्ञातकाल से विकसित होती चली आई है। इसलिए वर्तमान शताब्दी में यह लोक-प्रिय विधा है और नाटक तथा एकांकी रंगमंच से जुड़े हैं।

रंगमंच के लिए डा. ए. दीन मणिसिंह, हजारीमयुम सुबदनी देवी, ए. कृष्ण मोहन शर्मा आदि अनेक लोगों ने हिन्दी नाट्यों एवं एकांकी का मणिपुरी भाषा में अनुवाद किया है।

आलोचना एवं अन्य साहित्य

आधुनिक मणिपुरी आलोचना साहित्य अन्य विधाओं की तुलना में बहुत पीछे है। ए मिनिकेतन सिंह की पुस्तक "मैंने उपन्यास" में मणिपुरी उपन्यासों की नैतिकता और उपयोगिता की दृष्टि से आलोचना की गई है। साहित्यिगी नेनावा वारङे ए चन्द्रमणि सिंह की पुस्तक है जिसमें साहित्य की विभिन्न विधाओं पर निबन्ध है। काला चांद शास्त्री की पुस्तक 'कोरेङ लैतेङ, गोकुल शास्त्री की 'साहित्य मिइशेल' तथा ब्रज विहारी शर्मा की 'अलंकार कौमुदी' भारतीय काव्य शास्त्र पर आधारित काव्य शास्त्रीय पुस्तकें हैं। प्रो ए नील कान्तसिंह की पुस्तक 'अचाइबा से' में विद्वान लेखक ने साहित्य, धर्म, नृत्य, नाटक आदि पर जो आलोचनात्मक निबन्ध लिखे हैं, वे संग्रहीत हैं। वाग्लगी इचेल'

तथा किदम के एच चाओबा सिंह के विभिन्न विषयों पर लिखे निबन्धों के दो संग्रह हैं। वारङे नाचोम' एस. कृष्ण मोहन शर्मा के निबन्धों का संग्रह है। डा आई आर बाबू, ए दीनमणि, एन तोम्बी, सनख्या इबोतोम्बी टि एच. तोम्बी, गौरदास, चानथाम मणिहार, आई एस. कागजम मोइरांगथेम चन्द्रसिंह मोइरांगथेम नरेन्द्र, ओइमबाम भोगेश्वर, खुलेम चन्द्रशेखर आदि आलोचक भी हैं। अनेक संस्थानों ने विभिन्न आलोचकों के निबन्धों को इकट्ठा करके प्रकाशित किया है। उन संस्थाओं में से कल्चरेल फोरम, मणिपुर साहित्य परिषद, साहित्य सेवा समिति, थक्चीग आदि का नाम उल्लेखनीय है।

लोक साहित्य

गौरचन्द शर्मा की खुलङ इशै, आर के एलाङ्ब्बम की थाइनमी मणिमुक्ता, वीरमणिसिंह की 'फुङावारी' ह ओ भोगेश्वर की मणिपुरी लोकसाहित्य भाग एक 'एस गौरममणि सिंह की मणि परेंग खु चन्द्रशेखर सिंह की लाइराओ वालाई शोल, माला चाँदसिंह की, मैतै इनाल्की इशै, पुस्तकें मणिपुर लोक साहित्य सम्बन्धी पुस्तकें हैं। डा आई आर बाबू सिंह, प्रो ओ. इबोचा सिंह प्रो एन तोम्बासिंह डा सनातोबी देवी आदि ने भी लोक साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण शोध कार्य किया है।

अन्य

नन्दलाल शर्मा की 'मैनैरोन' पुस्तक मणिपुरी भाषा और लिपि के विकास पर अधिकारिक पुस्तक है। मणिपुरी भाषा से अंग्रेजी, हिन्दी अंग्रेजी मणिपुरी, हिन्दी मणिपुरी, मणिपुरी हिन्दी, मणिपुरी बंगला आदि दो तीन भाषा कोष भी मणिपुर में प्रकाशित हुए हैं। प द्विजमणिदेव शर्मा, खेलच ■ सिंह प राधा मोहन शर्मा, एल नारायण शर्मा आदि विद्वानों ने बहुभाषी कोष प्रकाशित किए हैं।

मणिपुरी में संस्कृति, इतिहास, साहित्य एवं पुरातत्व सम्बन्धी ढेरों ग्रंथ लिखे गए हैं इनमें डवलुयुमजाओ सिंह ओनोमबाम् शर्मा, मूलन आर के. सनाहल बी. नाम प्रो एन तोम्बीसिंह, मुतुआ बहादुर, डा पी गुणी द्रो सिंह, डा. के बी सिंह, डा सरोज नलिनी पैरेट, डा एम. कीर्तिसिंह, आर के. जलजीतसिंह, एन. खेलचन्द्रसिंह, कालाचाद शास्त्री, आदि विद्वान प्रमुख हैं।

मचेत, इम्फाल चाइवी, मिस बोतल, मैट्रिक पास, मनि ममो, आदि। कांगजम इबोहल सिंह ने भी नाटक एवं एकांकी लिखे हैं।

मणिपुरी भाषा में विभिन्न भाषाओं के नाटकों के अनुवाद भी किए गए हैं। सम्प्रति रंगमंच से रतन कुमार थियाम कोरम मनख्या इबोतोम्बी, कन्हाय लाल वारेप्पानव ने अनेक प्रयोग किए हैं। कोरस मणीपुर ड्रामेटिक यूनियन, रूप महल आर्यन थियेटर सोसायटी थियेटर जैसी अनेक संस्थाएं इम्फाल में हैं, जिनके पास अपने हाल हैं, जिनमें निरन्तर नाटकों का मंचन होता है।

वास्तव में नाटक मध्यकाल में नहीं लिखे गए, किन्तु नाटकों का अभिनव शुमाङलीला या और जात्रावली के नाम से होता रहा। ये लोक नाट्य परम्परा मणिपुर में खुले मैदान में शताब्दियों से प्रचलित रही है। इसलिए नाट्य-विधा यद्यपि साहित्यिक विधा के रूप में बीसवीं शताब्दी में विकसित हुई है, तथापि लोकनाट्य परम्परा में यह अज्ञातकाल से विकसित होती चली आई है। इसलिए वर्तमान शताब्दी में यह लोक-प्रिय विधा है और नाटक तथा एकांकी रंगमंच से जुड़े हैं।

रंगमंच के लिए डा ए. दीन मणिसिंह, हजारीमयुम सुवदनी देवी, ए. कृष्ण मोहन शर्मा आदि अनेक लोगों ने हिन्दी नाट्यों एवं एकांकी का मणिपुरी भाषा में अनुवाद किया है।

आलोचना एवं अन्य साहित्य

आधुनिक मणिपुरी आलोचना साहित्य अन्य विधाओं की तुलना में बहुत पीछे है। ए मिनिकेतन सिंह की पुस्तक "मैंने उपन्यास" में मणिपुरी उपन्यासों की नैतिकता और उपयोगिता की दृष्टि से आलोचना की गई है। साहित्यिगी मेनाबा वारछे ए चन्द्रमणि सिंह की पुस्तक है जिसमें साहित्य की विभिन्न विधाओं पर निबन्ध है। काला चाँद शास्त्री की पुस्तक शरेङ लैनेङ, गोकुल शास्त्री की 'साहित्य मिङसेल' तथा ब्रज बिहारी शर्मा की 'अलंकार कौमुदी' भारतीय काव्य शास्त्र पर आधारित काव्य शास्त्रीय पुस्तकें हैं। प्रो ए नील कान्तसिंह की पुस्तक 'अचाइबा लें' में विद्वान लेखक ने साहित्य, धर्म, नृत्य, नाटक आदि पर जो आलोचनात्मक निबन्ध लिखे हैं, वे संग्रहीत हैं। वामलगी इचेल'

तथा किदम के एच. चाओबा सिंह के विभिन्न विषयो पर लिखे निबन्धो के दो संग्रह हैं। वारङे नाषोम' एस. कृष्ण मोहन शर्मा के निबन्धो का संग्रह है। डा आई. आर बाबू, ए दीनमणि, एन तोम्बी, सनख्या इबोतोम्बी टि एच तोम्बी गौरदास, चागथाम मणिहार, आई एस कागजम मोइरांगथेम चन्द्रसिंह मोइरांगथेम नरेन्द्र, आइमबाम बोगेश्वर, खुलेम चन्द्रशेखर आदि आलोचक भी हैं। अनेक संस्थानो ने विभिन्न आलोचकों के निबन्धो को इकट्ठा करके प्रकाशित किया है। उन संस्थाओ मे से कलचरेल फारम, मणिपुर साहित्य परिषद, साहित्य सेवा समिति, ककचीग आदि का नाम उल्लेखनीय है।

लोक साहित्य

गौरचन्द शर्मा की खुलङ इशै, आर के एलाङब्बम की थाइनगी मणिमुक्ता, बीरमणिसिंह की 'फुङावारी' रु ओ भोगेश्वर की मणिपुरी लावसाहित्य भाग एक एस गौरममणि सिंह की मणि परेंग खु चन्द्रशेखर सिंह की लाइराओ वालाई शोल, काला चांदसिंह की मंतं इनात्की इशै पुस्तकें मणिपुर लोक साहित्य सम्बन्धी पुस्तकें हैं। डा आई आर. बाबू सिंह, प्रो ओ. इबोचो सिंह, प्रो एन तोम्बासिंह डा सनातोबी देवी आदि ने भी लोक साहित्य के क्षेत्र म महत्वपूर्ण शोध कार्य किया है।

अन्य

नन्दलाल शर्मा की 'मैनैरोन' पुस्तक मणिपुरी भाषा और लिपि के विषय पर अधिकारिक पुस्तक है। मणिपुरी भाषा से अंग्रेजी, हिन्दी अंग्रेजी मणिपुरी, हिन्दी मणिपुरी, मणिपुरी हिन्दी, मणिपुरी बगला आदि दो-तीन भाषा कोश भी मणिपुर मे प्रकाशित हुए हैं। प द्विजमणिदेव शर्मा खेलच द्र सिंह प राधा मोहन शर्मा, एल. नारायण शर्मा आदि विद्वानो ने बहुभाषी कोष प्रकाशित किए हैं।

मणिपुरी मे सस्कृति, इतिहास, साहित्य एव पुरातत्व सम्बन्धी ढेरो ग्र थ लिखे गए हैं इनमें डबलुयुमजाओ सिंह, ओनोमबापू शर्मा, झुलन आर के. मनाहल बी. काम प्रा एन तोम्बासिंह, मुलुआ बहादुर, डा पी. गुणो-द्रो सिंह, डा. के बी. सिंह, डा सरोज नलिनी पैरेट, डा एम. कीर्तिसिंह, आर के. जलजीतसिंह, एन. खेलचन्द्रसिंह, कालाचांद शास्त्री, आदि विद्वान प्रमुख हैं।

थाला चौद शास्त्री ने महाभारत का 22 मडो में मणिपुरी अनुवाद का महान कार्य किया है। कालिदास, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, बकिम, शरत आदि के साथ प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, धर्मवीर भारती आदि के ग्रन्थो तथा धार्मिक सास्कृतिक ग्रन्थो का भी मणिपुरी भाषा म अनुवाद हो चुका है।

मणिपुरी भाषा का आधुनिक काल का इतिहास यद्यपि अल्पकालीन इतिहास है किन्तु विविधता एव गुणात्मकता के साथ परिमाण की दृष्टि से भी सतोषजनक है।

जनजातीय भाषा साहित्य

मणिपुर की जनजातियो मे अनक भाषाएँ प्रचलित है। उनकी भाषाओ में बहुत कम साहित्य उपलब्ध हैं। पाठय पुस्तको एव ईसाई धर्म सम्बन्धी पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ लोक गीत या लोक-कथा सग्रह तथा छोटे-छोटे कोष उपलब्ध हैं। रोमन लिपि मे प्रकाशित यह साहित्य ईसाई मिशन द्वारा चलाई जाने वाली दुकानो पर उपलब्ध है। मणिपुरी जनजातियो की भाषा में कुछ दैनिक समाचार पत्र निकलते हैं। उनमे से "युजवना" नामक दैनिक समाचार पत्र प्रसिद्ध है। मणिपुरी भाषा में अनेक समाचार एव पत्र पत्रिकाएँ निकलती हैं। किन्तु जनजातीय भाषाओ म इनका अभाव ही है। एक-दो समाचार पत्रों को छोड़कर पत्रकारिता के क्षेत्र म इन भाषाओ में शून्य की स्थिति है। जन-जातीय साहित्य से कही लोक साहित्य अधिक समृद्ध है। इस समृद्ध लोक साहित्य का सकलन आवश्यक है।

पत्रकारिता

मणिपुर मे पत्रकारिता के क्षेत्र में हिजम एरावतसिंह को अग्रणी माना जाता है जिन्होंने मैतै चानू ? नामक पत्रिका का 1924 ई मे प्रकाशन किया था। मणिपुरी भाषा की यह पहली पत्रिका थी।

1933 मे अतोमवापू शर्मा द्वारा सबसे पहला दैनिक पत्र 'दैनिक मणिपुर' के नाम से प्रकाशित हुआ था। कहा जाता है कि जब दैनिक मणिपुर निकाला गया सम्पूर्ण उत्तर पूर्वी क्षेत्र मे कोई दैनिक पत्र नही था।

1940 ई म 'मणिपुरी मतम' प्रकाशित होता था। दैनिक मणिपुर के

प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। 1946 में अतोमबापू शर्मा ने अपनी पत्नी के नाम से "भाग्यवती पत्रिका" नामक दैनिक का पुन प्रकाशन आरम्भ किया। 'भाग्यवती मासिक" तथा 'भाग्यवती ललित कला' नामक दो पत्रिकाएँ भी अतोमबापू द्वारा ही सम्पादित और प्रकाशित की जाती थी। मणिपुर मे पत्रकारिता का इतिहास अभी लिखा जाना है। फिर मणिपुर याओजेल (1939) तथा 'दा सि" (1945) के प्रकाशन का उल्लेख मिलता है। इन दोनों पत्रों से हिन्दी तथा देवनागरी लिपि के प्रचार-प्रसार का इतिहास भी जुड़ा है। इस प्रारम्भिक परिचय के पश्चात निम्न तालिका द्वारा मणिपुर से निकलने वाले पत्र पत्रिकाओं की सख्या ज्ञात हो जाएगी।

समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओ की सख्या वर्ष 1982 मे

भाषा	दैनिक	साप्ताहिक	पाक्षिक	मासिक	त्रैमासिक	वार्षिक	अन्य	योग
अंग्रेजी	4	1	1	1	1	3	1	12
द्विभाषी	6	3	2	6	4	—	1	22
बहुभाषी	5	—	1	1	—	—	1	08
अन्य	18	4	6	13	4	—	3	48
योग	33	8	10	21	9	3	5	89

मणिपुर पत्रकारिता के क्षेत्र मे उत्तर पूर्वी क्षेत्र मे 33 दैनिक समाचार पत्र निकालकर सबसे आगे है। जबकि असम से मात्र सात दैनिक, मेघालय से एक, मिजोरम से 18 और त्रिपुरा से 13 दैनिक निकलते हैं।

माला चाँद शास्त्री ने महाभारत का 22 मढो मे मणिपुरी अनुवाद का महान कार्य किया है। कालिदास, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, बंकिम, शरत आदि के साथ प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, धर्मवीर भारती आदि के ग्रन्थो तथा धार्मिक सास्कृतिक ग्रन्थो का भी मणिपुरी भाषा मे अनुवाद हो चुका है।

मणिपुरी भाषा का आधुनिक काल का इतिहास यद्यपि अल्पकालीन इतिहास है किन्तु विविधता एव गुणात्मकता के साथ परिमाण की दृष्टि से भी सतोषजनक है।

जनजातीय भाषा साहित्य

मणिपुर की जनजातियो म अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं। उनकी भाषाओ मे बहुत कम साहित्य उपलब्ध हैं। पाठय पुस्तकें एव ईसाई धर्म सम्बन्धी पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ लोक गीत या लोक-कथा सग्रह तथा छोटे-छोटे कोष उपलब्ध हैं। रोमन लिपि मे प्रकाशित यह साहित्य ईसाई मिशन द्वारा चलाई जाने वाली दुकानो पर उपलब्ध हैं। मणिपुरी जनजातियो की भाषा मे कुछ दैनिक समाचार पत्र निकलते हैं। उनमे से 'यूजक्ना" नामक दैनिक समाचार पत्र प्रसिद्ध है। मणिपुरी भाषा मे अनेक समाचार एव पत्र पत्रिकाएँ निकलती हैं। किन्तु जनजातीय भाषाओ म इनका अभाव ही है। एक-दो समाचार पत्रों को छोड़कर पत्रकारिता के क्षेत्र म इन भाषाओ म शून्य की स्थिति है। जन-जातीय साहित्य म कही लोक साहित्य अधिक समृद्ध है। इस समृद्ध लोक साहित्य का सकलन आवश्यक है।

पत्रकारिता

मणिपुर में पत्रकारिता के क्षेत्र में हिजम इरावतसिंह को अग्रणी माना जाता है जिन्होने मैतै चानू ? नामक पत्रिका का 1924 ई मे प्रकाशन किया था। मणिपुरी भाषा की यह पहली पत्रिका थी।

1933 मे अतोमवापू शर्मा द्वारा सबसे पहला दैनिक पत्र 'दैनिक मणिपुर के नाम से प्रकाशित हुआ था। कहा जाता है कि जब दैनिक मणिपुर निकाला गया सम्पूर्ण उत्तर पूर्वी क्षेत्र मे कोई दैनिक पत्र नहीं था।

1940 ई मे 'मणिपुरी मतम' प्रकाशित होता था। दैनिक मणिपुर के

प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। 1946 में अतोमबापू शर्मा ने अपनी पत्नी के नाम से "भाग्यवती पत्रिका" नामक दैनिक का पुनः प्रकाशन आरम्भ किया। 'भाग्यवती मासिक" तथा "भाग्यवती ललित कन्या" नामक दो पत्रिकाएँ भी अतोमबापू द्वारा ही सम्पादित और प्रकाशित की जाती थी। मणिपुर में पत्रकारिता का इतिहास अभी लिखा जाना है। फिर मणिपुर याओजेल (1939) तथा 'डा. सि." (1945) के प्रकाशन का उल्लेख मिलता है। इन दोनों पत्रों से हिन्दी तथा देवनागरी लिपि के प्रचार-प्रसार का इतिहास भी जुड़ा है। इस प्रारम्भिक परिचय के पश्चात निम्न तालिका द्वारा मणिपुर से निकलने वाले पत्र पत्रिकाओं की सख्या ज्ञात हो जाएगी।

समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं की सख्या वर्ष 1982 में

भाषा	दैनिक	साप्ताहिक	पाक्षिक	मासिक	त्रैमासिक	वार्षिक	अन्य	योग
अंग्रेजी	4	1	1	1	1	3	1	12
द्विभाषी	6	3	2	6	4	—	1	22
बहुभाषी	5	—	1	1	—	—	1	08
अन्य	18	4	6	13	4	—	3	48
योग	33	8	10	21	9	3	5	89

मणिपुर पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्तर पूर्वी क्षेत्र में 33 दैनिक समाचार पत्र निकालकर सबसे आगे है। जबकि असम से मात्र सात दैनिक, मेघालय से एक, मिजोरम से 18 और त्रिपुरा से 13 दैनिक निकलते हैं।

मणिपुर के खेल

सारे संसार में विभिन्न खेल खेले जाते हैं। मणिपुर के खेलों के सम्बन्ध में एक विशिष्टता है कि यहाँ के अपने स्थानीय खेल हैं, जो अन्यत्र कहीं भी नहीं खेले जाते हैं। दूसरी विशेषता यह है कि यहाँ की जनता विशेष रूप से खेल प्रिय है। कोई संध्या ऐसी नहीं होती जब खेलों का आयोजन नहीं होता हो। तेज वर्षा व कीचड़ में सने, और पानी से भीगे खिलाड़ी खेलते हुए देखे जा सकते हैं। तीसरी बात यह है कि जहाँ भी खेल हो रहा है दर्शक पर्याप्त संख्या में खिलाड़ियों को प्रोत्साहित करने के लिए उपस्थित रहते हैं। हर बस्ती, मोहल्ले या गाँव में खेल का मैदान जरूर होता है और विभिन्न खेलों के अनेकों क्लब प्रत्येक बस्ती में होते हैं। इन क्लबों के लिए संयोजक जनता से चंदा माँगते हैं और जिससे भी चंदा माँगा जाता है वह उदारता पूर्वक खेलों के नाम पर चंदा देता है। विभिन्न स्तरों पर आए दिन प्रतियोगिताएँ होती रहती हैं। अंतिम (फाइनल) प्रतियोगिताएँ जब राज्य स्तर पर राजधानी इम्फाल में आयोजित होती हैं तो आए दिन राजधानी के समस्त कार्यालयों से सचिवालय तक में आधे दिन के अवकाश की घोषणा कर दी जाती है और प्रत्येक प्रतियोगिता के को देखने के लिए मुख्यमंत्री, मंत्री अधिकारी कर्मचारी सभी पहुँच जाते हैं। दर्शकों की अपार भीड़ के बीच इन प्रतियोगिताओं का प्रदर्शन होता है। प्रतियोगी जनता से साधुवाद पाने के लिए जी जान से मुकाबला करते हैं। अपने दल के श्रेष्ठ प्रदर्शन हेतु तथा प्रसिद्धि पाने हेतु वर्ष भर विभिन्न स्तरों पर अभ्यास चलते रहते हैं। सम्भव है भारत के अन्य प्रान्तों में खेलों के प्रति इतनी अभिरुचि नहीं हो। खिलाड़ियों की अभिरुचि तो संभव है परन्तु जनता की भी उतनी ही अभिरुचि आश्चर्य का विषय है।

चौथी विशेषता यह है कि खिलाड़ी बच्चे से लेकर बूढ़े तक होते हैं। यह विशेषता भी मणिपुर की अपनी है। महिलाओं और बालिकाओं में भी खेलों के प्रति गहरी अभिरुचि देखी जाती है। अध्ययनरत बालिकाएँ विद्यालय एवं महाविद्यालयों के खेलों में विशेष रुचि लेती हैं। खेलों के प्रति विशेष रुचि के

परिणामस्वरूप ही यहाँ के खिलाडियो ने राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्धि प्राप्त की है।

विश्व प्रसिद्ध अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर खेले जानेवाले 'पोलो" की जन्मभूमि मणिपुर ही है। "सगोल काङ जैं" नामक स्थानीय खेल का परिवर्तित रूप "पोलो" है।

पाचवी बात यह है कि यहाँ अन्तरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय खेलो के अतिरिक्त कुछ ऐसे स्थानीय खेल हैं, जो केवल मणिपुर मे खेले जाते हैं। यहाँ पर उन्हीं खेलो का सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

खेलों के सम्बन्ध मे विशेष बात यह है कि ये धार्मिक पर्वों एव उत्सवो मे जुड़े हैं। उनका विशिष्ट समय निर्धारित था और उन्हें उन अवसरो पर खेलना धार्मिक दृष्टि से अनिवार्य था। इसी कारण से अज्ञातकाल से मणिपुर मे खेलो की परम्परा रही है। इधर कुछ वर्षों से जब से भारत सरकार और मणिपुर सरकार ने खेलो को प्रोत्साहन एव आर्थिक सहायता देना आरम्भ किया है, मणिपुर के जन-जीवन मे खेलो का महत्व और भी बढ गया है।

मणिपुर अपने नृत्यो एव कुटीर उद्योगो के उत्पादन के कारण देश-विदेश में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है, किन्तु यदि मणिपुर के स्थानीय खेलो का और खिलाड़ियो से, विभिन्न प्रचार माध्यमों द्वारा, ससार को परिचित कराया जाता तो मणिपुर अपने खेलो के लिए नृत्य और हस्तकला की वस्तुओ से कहीं अधिक प्रसिद्ध होता। यहाँ के खेलों मे पौरुष, शक्ति और कौशल का अद्भुत मिश्रण हुआ है। जो भी इन खेलो को देख लेता है, वह इन्हें भूल सकेगा इसमें सदेह है।

हियाङ तन्नब या हैक्रु हिदोङबा : मणिपुर की नौका दौड प्रतियोगिता

हि=नाव, याङ (बा) =तीव्रगति, तथा तान्नबा—प्रतियोगिता और हैक्रु—आँवला, हि—नाव तथा दोङबा (तान्नबा)—प्रतियोगिता या सवारहोना।

हैक्रु हिदोङबा मणिपुर की नौका दौड़ प्रतियोगिता है। प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ला एकादशी को श्री विजय गोविन्दजी के मदिरकी परिक्रमा में नौकादौड़का दिन के अतिम प्रहर म आयोजन किया जाता है। आयोजन से पूर्व दो मालाएँ जिनमें प्रत्येक में 108 आँवले, 108 चावल तथा "टृप" नामक पवित्र घास से मालाएँ बनाई जाती है। शकु के आकार के पात्र में सोना या चाँदी के टुकडे डालकर श्री विजय गोविन्द जी तथा रासेश्वरी राधा जी को ये मालाएँ अर्पित की जाती हैं। इनके साथ आँवले भी होते हैं। बाद में ये दोनो मालाएँ नौका दौड से पूर्व दोनो तेइ माई सेप्पा (मुख्य नाविकों) के गले में पहनाई जाती हैं।

इस प्रतियोगिता में अक्सर दो नौकाएँ होती हैं। प्रत्येक नौका में दस से सत्तरह नाविक होते हैं। तेहमाई लेप्पा (प्रमुख नाविक) अवसरानुकूल विशेष वेश भूषा पहनकर नाव के अग्रभाग में खड़ा रहता है। उसके एक हाथ में पतवार होती है और दूसरे में रूमाल। उसका दाहिना पाँव नाव के अग्रभाग पर रखा जाता है। ठीक उसके पीछे चाइशाव (विशेष वेश-भूषा में) रहता है, जो प्रमुख नाविक की कमर को दोनों हाथों से थामे रहता है, ये दोनों नौका नहीं खेते हैं। इनके बाद तीसरे स्थान पर नोरूब्बा रहता है, जो नौका खेनेवाले नाविकों का मुखिया होता है जो स्वयं भी पतवार चलाता है। इसके पीछे हिरोई या नाविक रहते है जो खड़े-खड़े पतवार से नौका चलाते है। प्रत्येक नाविक घुटनों तक धोती और सिर पर पगड़ी बाँधे होता है। अन्त में नौका में पृष्ठ भाग में हिनाओशाबा नामक नाविक बैठता है जो नाव को मोड़ने का कार्य करता है। इसकी वेश भूषा भी विशिष्ट होती है।

ये दोनों नावें लगभग 17-18 फीट लम्बी होती हैं। अग्रभाग में 'शड़ाई' (हिरन) की आकृति बनी होती है, तो पृष्ठभाग के सिरे पर राक्षसी की। एक नाव के पृष्ठ भाग में मानवकृति (सिर) होती है। इसे राक्षस का सिर माना जाता है। इसका संबध एक ऐतिहासिक घटना से है—थाबान थावना नामक (1145-1231 ई०) मैतै राजा के शासन काल में सुमनवश के वीर नवाक्पा लैतोन पानबा नामक व्यक्ति ने तालिया येल्लाइया नामक मैतै वंश के वीर की नौका को युद्ध से लौटकर आते समय घात लगाकर रोका। किन्तु तालिया येल्लाइबाने नवाक्पा लैतोन पानबा को बाल पकडकर नाव पर खींच लिया तथा पतवार से उसका सिर काट डाला। अत. उसी के सिर के प्रतीक के रूप में नाव के पृष्ठ भाग में मानव कृति बनाई जाती है। यह नाव मानव शरीर व अंगों की प्रतीक है और इस नौका द्वारा थाङ्‌गपात (परिखा या जलाशय) को पार करना भवसागर को पार करना है।

कभी यह त्योहार और खेल राजमहल के तीन ओर बनी परिखा में तीन दिन तक चलता था। इसके साथ ही मणिपुर के अन्य खेलों का भी आयोजन किया जाता था कि तु अब यह त्योहार एक दिन के लिए मनाया जाता है। जबकि पहले ये प्रतियोगिताएँ विभिन्न स्थानों पर विभिन्न दलो के बीच भी होती थी और पाना (जिला) दलो के बीच में भी होती हैं।

नौका दौड़ के दिन तेहमाई लेप्पा (प्रमुख नाविक) अपने नाविक दल को अपने घर पर भोज देता है। उसके बाद दोनों प्रमुख नाविक अपने दल क

सदस्यो के साथ अपनी-अपनी पतवार सँभाले ढोल बजाते हुए रथ पर चढकर प्रतियोगिता स्थल पर पहुँचते हैं। ये गीत भी गाते हैं —"हि हि हि, हा हि ओ हिओ। "यह दोनो दल श्री विजय जी के मंदिर स बाहर परिखा के किनारे रखे श्री विजय गोविन्द जी एव रसेश्वरी राधा जी के विग्रहों की पूजा अर्चना करते हैं और उपस्थित गुरु जनो को प्रणाम करते हैं। इसके बाद ये लोग अपनी-अपनी नाव पर सवार हो जाते हैं।

परिखा के दोनो ओर दो "हिगाबट" या विश्रामस्थल बनाए जाते है। इनसे निकल कर वे अपनी-अपनी नाव चलाकर देखते हैं। तब नौकाओ को ये परिखा के अतिम छोर पर ले जाते हैं। परिखा के दूसरे छोर पर जहाँ तक नावो को जाना होता है, के सिरे पर श्री विजय गोविन्द जी एव राधा जी के विग्रह रखे जाते हैं। नावें जब अपने स्थान पर नाविको के साथ तैयार हो जाती है, तब दर्शको की अपार भीड मे शख-ध्वनि के साथ प्रतियोगिता आरभ होती है, और नाविको की पतवारें चलने लगती हैं। प्रमुख नाविक अपने हाथ के रूमाल से नाव को तेज चलाने के लिए नाविको को प्रोत्साहित करता है। कभी-कभी वह अपना दाहिना पाँव भी नाव पर पटक-पटक कर नाविको को पतवार तेज चलाने का सकेत करता है। पृष्ठ भाग मे बैठा हिनाओ शाबा नौका पर नियत्रण रखता है और अवसरानुकूल उसको मोडता है। वह अपनी नौका से दूसरी नौका को टक्कर देता है, जिससे वह नौका आगे न बढ सके। दोनो दलो के समर्थक परिखा के किनारे खडे उन्हें प्रोत्साहन तो देते ही हैं कभी-कभी जोश मे आकर पानी में उतर कर अपने दल की नाव को धक्का मारकर आगे बढने में सहायता भी देते हैं। इससे कभी नाव उलट भी जाती है।

परिखा के अतिम छोर पर नावो के सामने एक रस्सी बँधी हुई रहती है। जो नाव उस रस्सी को पहले छू ले उसका प्रमुख नाविक अपनी पतवार उठाकर विजय का सकेत देता है। बाद में पहुँचने वाली नाव का प्रमुख भी नाविक भी पतवार उठाकर लक्ष्य पर पहुँचने का सकेत देता है। दोनो नावो के दल उतरकर विग्रहो को प्रणाम करके अपने-अपने विश्राम गृह मे चले जाते हैं। वहाँ वे केले के पत्तो मे चिडवा, केले आदि का जलपान करते हैं। जलपान एव विश्राम के पश्चात पुन दूसरी बार प्रतियोगिता होती है। दूसरी बार की प्रतियोगिता मे पहले जीतने वाला दल यदि विजय प्राप्त न भी कर पाता है तो भी प्रथम विजय को ही अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।

मणिपुर मैं अज्ञातकाल से यह त्यौहार मनाया जाता है। ईसवी सन् से

शताब्दियों पूर्व इस नौका दौड़ प्रतियोगिता के आयोजन का अनुमान विद्वानों ने लगाया है। किंतु सन् 984 ई० में महाराजा इरेम्बा के शासनकाल में इसके आयोजन के ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध है। सन 1709 से 48 ई० में पामहैबा गरीबनिवाज महाराज के काल में इसके आयोजन पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। किंतु बाद में 1761 ई० में महाराज भाग्यचन्द्र के शासन काल में उनके विद्वान मंत्री अनंतशाह द्वारा इस खेल के नियमों की खोज करके इसका आयोजन श्री विजय गोविन्द जी के मंदिर की परिखा में आरंभ किया गया। इसका वर्तमान स्वरूप उसी पर आधारित है। उस नौका दौड़ को देखने के लिए न केवल इम्फाल की बल्कि आसपास की जनता भी श्री विजयगोविन्द जी के मंदिर के परिसर में एकत्र हो जाती है तथा हजारों लोगों की उपस्थिति में इस प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता है। सालाना फसल का फल आँवला इस दिन के बाद से ही खाया जाता है।

मणिपुर के इतिहास लेखक प्रो० ज्योतिर्मय राय के मतानुसार थावन थाबा (1199 ई०) महाराजा के शासन काल में खुमन और मोइराङ वंशों के बीच लोकताक झील में एक जलयुद्ध हुआ था। उसी युद्ध की स्मृति में आज तक हियाङ हिरेल या नौका दौड़ का त्योहार मनाया जाता है।

युबी लाकपी

युबी=नारियल एवं लाकपी=छीनना। खोङ काङ्जे की तरह इसमें भी सामान्यत सात सात खिलाड़ियों के दो दल होते हैं। युबी लाकपी खेल का मैदान 45 72×18 20 मीटर होता है। इस मैदान के एक छोर पर रेखाओं द्वारा एक आयत बना हुआ होता है। इस आयत के केन्द्र में एक वृत बना होता है। वास्तव में इस वृत की रेखा को जब कोई खिलाड़ी पार करके आयत के बाहर बैठे जज (प्राचीनकाल में राजा) को नारियल समर्पित करने में सफल होता है तो उसका दल विजयी माना जाता है। वास्तव में यह खेल एक खिलाड़ी के विरुद्ध अनेकों (पाँच से पचास तक) का खेल है। इस खेल में खिलाड़ियों की संख्या खिलाड़ी ही तय करते हैं।

खेल हरी दूब के मैदान पर खेला जाता है। खेल का प्रारंभ रेफरी द्वारा एक तेल से भीगे बिना छाले गए सूखे नारियल को मैदान के किसी एक कोने में फेंकने से होता है। सारे खिलाड़ी मैदान में नारियल फेंके जाने की प्रतीक्षा में

खड़े रहते हैं। नारियल गिरने के साथ कोई खिलाड़ी उसको उठाकर भागना चाहता है और उसके विरुद्ध दूसरे दल के सभी खिलाड़ी भिड़ जाते हैं और उससे नारियल छीनने का प्रयत्न करते हैं। तेल की चिकनाई से युक्त यह नारियल हाथों से फिसलता भी है, जब विरोधी दल वाले नारियल छीनने के लिए एक खिलाड़ी पर टूट पड़ते हैं, तो वह किसी प्रकार नारियल को अपने दल तक पहुँचाता है। जिस खिलाड़ी के पास नारियल पहुँचता है वही विरोधी दल के आक्रमण का केन्द्र बन जाता है। गुत्थम-गुत्था होते हुए और छीना-झपटी करते हुए, यदि कोई खिलाड़ी नारियल के साथ आयत में बने वृत को सामने से पार करने में सफल हो जाए और उस पार बैठे जज को नारियल समर्पित कर सके तो उसका दल विजयी होता है।

खेल के दौरान खिलाड़ी अपने प्रतिद्वन्द्वी को मुक्का से या पाँव से मार नहीं सकता है, इसके अतिरिक्त वह सब कुछ कर सकता है। जब भी कोई खिलाड़ी नारियल लेकर भागता है तो सभी विरोधी दल के खिलाड़ी उस पर टूट पड़ते हैं और वह खिलाड़ी नारियल को छिन जाने से बचाने के लिए भूमि पर लेट जाता है। उस समय का दृश्य बड़ा विचित्र होता है, मैदान में सभी खिलाड़ी मात्र एक ढेर के रूप में दिखाई देते हैं। जैसे ही नारियल एक खिलाड़ी से दूसरे के हाथों में पहुँचता है पुन यह प्रक्रिया आरभ हो जाती है। कभी-कभी युबी-लाकपी के दर्शक क्रुद्ध उठते हैं, जब किसी खिलाड़ी को नारियल के साथ घेर लिया जाता है और उसे हिलने नहीं दिया जाता है। तब रेफरी उ हें हटाता है और फिर नए सिरे से खेल आरभ होता है। युबी-लाकपी में जो पौरुष प्रदर्शन होता है, वह सभवत. और किसी खेल में नहीं है।

याओसङ (होली) के अवसर पर एक दिन 'पिचकारी' रंग खेलने का दिन निर्धारित होता है। उस दिन यह खेल राजभवन के सुन्दर दूब के मैदान पर खेला जाता है। अन्य खेलों के समान इस खेल का सम्बन्ध भी धार्मिक उत्सवों से जुड़ा हुआ है। यह खेल श्री विजयगोविन्द जी के मन्दिर के दूब के मैदान में भी खेला जाता है। वहाँ नारियल अमृत घट के प्रतीक के रूप में मैदान में रखा जाता है। समुद्र मथन का अभिनय किया जाता है, तब देव और दानव दल मैदान में उतरते हैं और अमृत घट के प्रतीक नारियल को लेकर उनमें छीना-झपटी आरम होती है। विजय प्राप्त करने वाला दल उस नारियल को श्री विजयगोविन्द जी को अर्पित करता है। समुद्र मथन की पौराणिक घटना से इस खेल का सबध जुड़ा है अत· यह खेल प्राचीन होना चाहिए। परन्तु

डा इबोहल सिंह काङजम इसको इतना प्राचीन खेल नही मानते हैं। युबी-लाकपी मणिपुर का अत्यन्त लोकप्रिय खेल है, साथ ही स्थानीय भी है। इस खेल के भी अन्य खेलों की भाँति नियम हैं, जिनके अनुसार यह खेल खेला जाता है।

मुक्ना

मुक्ना अर्थात मणिपुरी कुश्ती। मणिपुर के अनेक स्थानीय खेलों में मुक्ना भी एक खेल है, जो शताब्दियों से खेला जाता है। यह दो पुरुषों के बीच शक्ति परीक्षण का खेल है, जिसमें केवल शारीरिक शक्ति का उपयोग किया जाता है। इस कुश्ती के समय दोनो प्रतिभागी सिर पर साफा बाँधते हैं। कमर के नीचे घुटनो तक धोती बाँधते हैं, जिस पर चादर को रस्सी की तरह बटकर तथा कसकर बाँधा जाता है। तब दोनों मल्ल अखाड़े में उतरते हैं तथा रेफरी' के सम्मुख खड़े होने के साथ एक-दूसरे की कमर मे बधी रस्सी नुमा चादर को पकड़ लेते हैं और सिर एक-दूसरे के कंधे पर रख देते हैं। रेफरी के संकेत पर भिड़न्त आरंभ होती है। पैरो में पैर फसाकर एक-दूसरे को गिराने का प्रयत्न आरंभ होता है। पैरों द्वारा गिराने के प्रयत्नों के साथ उठाने पटकने की प्रक्रिया भी शुरू होती है। जब एक खिलाड़ी उठाने में समर्थ हो जाता है तो दूसरा खिलाड़ी उससे चिपक जाता है ताकि उठाने वाला उसे गिरा न सके और गिराने में सफल भी हो तो चित न कर सके। अतः कई बार गिरने पर भी कोई भी चित नही हो पाता है तो फिर खड़े होकर मुकाबला आरंभ होता है। यह क्रम तब तक चलता है, जब तक कि एक व्यक्ति चित न गिरे। जब भी कमर में बधी रस्सीनुमा चादर ढीली हो जाए तो रेफरी खेल को रोककर उसे पुनः कसकर बाँधने का अवसर देता है।

वर्ष भर गाँव-गाँव व बस्ती-बस्ती में मुक्ना चलता है और अंत में जिस मल्ल को चुनौती देने वाला कोई न रह जाए, उसको मुकना जात्रा या मुक्ना चैम्पियन घोषित किया जाता है। जो भी खिलाड़ी मैदान में जब चित हो जाता है, तो वह चुपचाप मैदान से बाहर चला जाता है। प्रतिवर्ष एक मुक्ना का विभिन्न प्रतियोगिताओं के बाद चयन किया जाता है।

इस खेल में सामान्यतः समान आयु वजन व कद के दो व्यक्तियों को भिड़ाया जाता है। परन्तु इस संबंध में विशेष प्रतिबंध भी नहीं है। प्रत्येक

"लाई हराओबा" के अन्तिम दिन देव विग्रह के सम्मुख मुकना का आयोजन अनिवार्य होना है और बिना मुकना के पूजा पूरी नहीं मानी जाती है। मुकना पुरुषों की शक्ति और कौशल प्रदर्शन हेतु खेला जाने वाला मणिपुर का लोक-प्रिय व सम्माननीय खेल है। "लाई हराओबा" (देवताओं को प्रसन्न करने का नृत्याभिनय पूर्ण उत्सव) में भाग लेने आई भक्तों की भीड़ के सम्मुख यह खेल खेला जाता है तथा मुकना में भाग लेने वाले प्रतियोगी विशेष सम्मान एवं साधुवाद के पात्र होते हैं। "खोङ्-काङ जै" नामक खेल के एक अंग के रूप में भी मुकना खेला जाता है।

खोङ्-काङ जै

खोङ काङ जै को मणिपुरी हॉकी कहा जा सकता है। खोङ का अर्थ पाँव है। काङ का अर्थ गेंद और जै का अर्थ छड़ी है। खोङ काङ जै सात-सात खिलाड़ियों के दो दलों के द्वारा खेला जाता है। प्रत्येक खिलाड़ी के हाथ में बांस या बेंत की चार साढ़े चार फीट की एक छड़ी होती है जिसका एक छोर हॉकी स्टिक की तरह से मुड़ा हुआ होता है। इसकी गेंद बाँस की गोलाकार व सूखी जड़ होती है। 184 मीटर × 92 मीटर के मैदान में रेफरी द्वारा गेंद को फेंकने के साथ यह खेल प्रारंभ होता है। गोल करने के लिए खंभे नहीं होते केवल दोनों ओर की सीमा को गेंद जब पार कर जाए तो गोल माना जाता है। गेंद को खिलाड़ी किसी भी तरह ले जा सकता है, किन्तु गोल के लिए गेंद को छड़ी से मारकर सीमा पर कराना आवश्यक होता है।

खेल के दौरान जब एक खिलाड़ी गेंद को लेकर गोल की तरफ भागता है तो उसको अक्सर प्रतिद्वन्द्वी खिलाड़ी से कड़ा मुकाबला करना पड़ता है। यह मुकाबला शक्ति परीक्षण में भी बदल जाता है और गेंद को छीनने के लिए मुकना (कुश्ती) होने लगती है। एक खिलाड़ी अपने प्रतिद्वन्द्वी को पाँव में पाँव फँसाकर, कपड़े को पकड़कर या कुश्ती द्वारा गिरा भी सकता है। जब एक खिलाड़ी काङ जै (छड़ी) से गेंद पर प्रहार करता है तो दूसरा उसको अपनी छड़ी पर रोक कर गोल बचाता है। इस बीच कोई तीसरा खिलाड़ी गेंद को हाथ-पाँव या छड़ी से ले भागता है। हाथ में लेकर भागने पर कुश्ती की संभावना अधिक रहती है, क्योंकि उस समय नियमानुसार काङ जै का प्रयोग

वर्जित होता है। केवल हाथ से गेंद छीनी जा सकती है। एक दल का खिलाड़ी जब गेंद लेकर भागता है जो दूसरे दल वाले उसको रोकने का प्रयास करते हैं तब प्रथम दल वाले खिलाड़ी पीछा करने वाले खिलाड़ियों को विभिन्न तरीको से रोकने का प्रयास करते हैं और इसे रोकने की प्रक्रिया मे वे एक दूसरे से गुत्थम-गुत्थी करते हैं। उस समय मौका पाकर गेंद वाहक खिलाड़ी गेंद को यदि छड़ी द्वारा सीमा रेखा के पार कर सकता है, तो गोल मान लिया जाता है। खोङकाङ जें खेल देखने वालों को बहुत ही आनन्द आता है। खिलाड़ियों की फुर्ती, चतुराई व शारीरिक शक्ति देखने योग्य होती है। खोङकाङ जें भी मणिपुर का प्राचीन एवं लोकप्रिय खेल है। प्राचीन काल में प्रत्येक "पाना" (प्रशासकीय ईकाई) के दलो म प्रतियोगिताओ का आयोजन होता था और विजयी दलको राजा की ओर से पुरस्कार देकर सम्मानित किया जाता था। "खम्बा थोइबी" लोक गाथा में इस खेल का वर्णन उपलब्ध है, जिससे यह सिद्ध होता है कि यह खेल अत्यन्त प्राचीनकाल से मणिपुर का लोकप्रिय खेल रहा है।

सगोल काङ जें (पोलो)

सगोल अर्थात घोड़ा तथा काङजें का अर्थ है बाँस की सूखी गोलाकार जड़ (गेंद) तथा हॉकी स्टिकनुमा छड़ी से गेंद खेलना। वास्तव मे वर्तमान पोलो खेल इसी सगोल काङजे का विकसित रूप है।

मणिपुरी पुराणो मे सगोल काङजें खेल देवताओ द्वारा खेले जाने का उल्लेख मिलता है। मणिपुरी इतिहासकार सगोल काङजें का प्रचलन ईसा पूर्व 3100 वर्ष से मानते हैं। 33वीं ईसवी में पाखङबा नामक राजा की पत्नी लैशरा का जब रानी के रूप में अभिषेक किया गया तो सगोल काङजे का खेल प्रस्तुत किया गया था। इन पौराणिक घटनाओ से इसकी प्राचीनता स्वतः सिद्ध है। इसके खेल को विशेष प्रसिद्धि महाराजा कयाम्बा (1467-1508) के शासनकाल में प्राप्त हुई थी। इम्फाल के केन्द्र में पोलो ग्राउण्ड है, इसमें महाराजा खागेम्बा (1597-1652 ई) के शासन काल में प्रथम बार यह खेल खेला गया था जो आज तक खेला जाता है। महाराजा चन्द्रकीर्ति (1850 1886 ई) के शासनकाल में यह खेल ससार के अन्य भागो मे पहुँचा और खेला जाने लगा। 1863 ईसवी में मणिपुर से दो खिलाड़ी दल कलकत्ता गए तथा इस खेल का प्रदर्शन किया। सिलचर में रहने वाले अंग्रेजो ने प्रवासी मणिपुरी लोगो को जब वहाँ यह खेल खेलते देखा तो उन्होंने इसे सीखा और इसके कुछ नियम आदि बनाकर पोलो के नाम से खेलना

शुरू किया। वहीं सर्वप्रथम पोलो क्लब की स्थापना की गई थी। मणिपुर का यह स्थानीय खेल सगोल काङजे आज विश्व प्रसिद्ध पोलो बन गया है तथा अन्तरराष्ट्रीय नियमों के अनुसार अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर खेला जा रहा है।

मणिपुरी सगोल काङजे में घोड़े पर सवार सात-सात खिलाड़ियों के दो दल होते हैं, जिनके हाथ में काङजे या छड़ी रहती है। काङ या गेंद की गोलाई लगभग 14 इंच होती है। प्रत्येक खिलाड़ी के सिर पर पगड़ी बंधी होती है तथा टखने से घुटने तक कपड़े की पट्टी और घुटने से कमर तक धोती। वक्ष स्थल पर आजकल कमीज पहनी जाती है। प्रत्येक खिलाड़ी अपने घोड़े की पीठ पर विशेष प्रकार से जीन कसकर उस पर सवार होकर छड़ी घुमाता हुआ खेल के मैदान में उतरता है। घोड़ों की ऊंचाई लगभग साढ़े-चार फीट होती है अतः इन्हें घोड़े के बजाय टट्टू कहना उपयुक्त है।

खेल में ये प्रशिक्षित टट्टू व इनके सवार अद्‌भुत कलाबाजी और कौशल दिखलाते हैं। एक हाथ में घोड़े की लगाम दूसरे में छड़ी, घोड़े पर सवार होते हुए छोटी-सी गेंद का पीछा करना व उसको छड़ी से मारना या कभी छड़ी के ही सहारे उसको ऊपर उछालकर हाथ में ले लेना तथा सीमा रेखा के पार तक ले जाना या गेंद को मारने से रोकती उलझी हुई छड़ियाँ, कंधे से कंधा भिड़ाते हुए खेलना—खेल के दृश्य हैं, जिनमें खिलाड़ी खेल के साथ-साथ घुड़सवारी के भी आश्चर्य चकित करने वाले करतब दिखलाता है।

इस खेल के नियम बहुत ही सरल हैं। रेफरी जो स्वयं एक घोड़े पर सवार होता है उसका निर्णय किसी भी विवाद की अवस्था में मान्य होता है। 200× 100 गज आयताकार मैदान में यह खेल खेला जाता है और चौड़ाई वाली रेखा को जब गेंद पार कर जाए तो गोल मान लिया जाता है। मैदान की सीमा को सफेद रेखाओं से बनाया जाता है। गोल कीपर या गोल बचाने वाला कोई व्यक्ति नहीं होता है। किसी खिलाड़ी या टट्टू के घायल होने पर उनके स्थान पर दूसरा आ जाता है। खेल का समय निश्चित नहीं होता है जब तक सात गोल नहीं बना लें विजय नहीं होती है और जब एक दिन के खेल में विजय प्राप्त नहीं होती तो दूसरे दिन पुनः खेलना होता है और विजय प्राप्त होने तक यह खेल चलता है। चाहे कितने ही दिन क्यों न लगें। खेल के आरंभ में खिलाड़ी एक-दूसरे को फल भेंट करके मित्रता की भावना का प्रदर्शन करते हैं। प्राचीन काल में खेल के नियम सम्बन्धी अंतिम निर्णय राजा का माना जाता था। मणिपुर

में यह बहुत लोक प्रिय खेल था। प्रत्येक पुरुष की अभिलाषा टट्टू खरीदने और पोलो खेलने की रहती थी। आज भी मणिपुर के लोगों को यह खेल विशेष प्रिय है। हर सन्ध्या को गाँव-गाँव में यह खेल खेला जाता है। सत्तर अस्सी साल के बूढ़े लोगों को युवकों के साथ उछलते कूदते टट्टूओं पर उत्साह के साथ खेलते देखना मनोरंजक और प्रेरणादायक दृश्य होता है। अब मणिपुर में भी यह परम्परागत रूप में तथा अन्तरराष्ट्रीय नियमों के आधार पर भी खेला जाता है।

मणिपुर का इतिहास युद्धों और विजय पराजय का इतिहास है। इस छोटे से राज्य को पड़ोसी राज्यों से विशेष रूप से बर्मा से कई बार युद्ध करने पड़े थे। जंगलों से आच्छादित ऊँचे पर्वतों में युद्ध लड़ने के लिए कुशल घुड़सवार सेना की आवश्यकता थी। मणिपुर के राजा महाराजाओं ने इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर इस खेल को संरक्षण दिया था, जिससे जनता घुड़सवारी में दक्षता प्राप्त कर सके और समय पर युद्ध में घोड़े की पीठ पर बैठे हुए युद्ध कर सके।

काङ शान्नबा

काङ अर्थात गेंद और शान्नबा अर्थात खेलना। काङ का दूसरा अर्थ रथ भी होता है। यह खेल मणिपुरी नववर्ष के दिन चैराओबा से रथयात्रा के बीच खेलने की परम्परा थी और इस निर्धारित अवधि के बाहर यह खेल खेलना अपशकुन माना जाता था। पानथोइबी (दुर्गा का मणिपुरी नाम/युद्ध की देवी) को इस खेल की देवी माना जाता है। काङ मणिपुर का एक मात्र घर के भीतर खेला जाने वाला खेल है।

यह खेल भी अत्यन्त प्राचीन है और अज्ञातकाल से खेला जाता है। डॉ० इबोहल काङजम के मतानुसार—"लोगों का विश्वास है कि यह देवताओं का खेल था और देवताओं से मनुष्य ने इसे सीखा है। मिथक और लोक कथाओं में यह खेल खेले जाने का उल्लेख मिलता है। बारहवीं शताब्दी में यह मणिपुर का काफी लोकप्रिय खेल रहा। यह 30 से 42 फुट लम्बा और 16 से 18 फुट चौड़ी छत लगी हुई एक साफ सुथरी समतल आयताकार भूमि पर खेला जाता है। इस जगह को मणिपुरी में काङशङ (काङ खेलने का भवन) कहा जाता है।"

"काङ" खेल में गेंद नहीं होती है 5"-6" लम्बी, 4" चौड़ी और 1/3' मोटाई की अण्डाकार वस्तु होती है, जो लाख एवं कपास या भैंस के सींग से

बनाई जाती है। यह बहुत ही चिकनी होती है, इसके ऊपरी भाग को मुख कहा जाता है और नीचे के भाग को पीठ। खेल के दौरान इसकी चिकनाहट बढ़ाने के लिए मोमयुक्त कपड़े से इसको बार-बार रगड़ा जाता है। इसमें भी सात-सात खिलाड़ियों के दो दल भाग लेते हैं। काङ के खेल के प्रांगण में सात सीधी रेखाओं द्वारा एक आयत बनाया जाता है और प्रत्येक रेखा के बीच खिलाड़ी आमने-सामने बैठते हैं। ये रेखाएँ आटे या मैदे से खींची जाती हैं। प्रत्येक रेखा के दोनों सिरों पर चौड़ाई के बराबर-बराबर एक लक्ष्य रेखा बनी होती है जिस पर लक्ष्य रखे जाते हैं।

डॉ० इबोहल सिंह काङजम ने लिखा है—'जो लक्ष्य सीधी रेखा के आमने-सामने होते हैं, उन्हें "लम्फा काङखुल" याने लम्फा का लक्ष्य कहते हैं और उस जगह को लम्फा काङखुल' कहते हैं। सीधी रेखाओं की बगल में लम्फा काङखुल से 10 से 12 इंच की दूरी पर जो लक्ष्य रखे जाते हैं, उन्हें 'चेक्फ काङखुल' याने चेक्फ का लक्ष्य कहते हैं और उस जगह को चेक्फ काङखुल कहते हैं। खिलाड़ी को पहले 'चेक्फ' मारना होता है, बाद में लम्फा। दो चेक्फ मारने के बाद नियमानुसार एक लम्फा मारने पर एक गोल माना जाता है। लक्ष्य रेखा के पीछे दो फुट की दूरी पर सीमा रेखा होती है। फेंका हुआ काङ जब इस रेखा को पार कर लेता है तभी दूसरे दल के खिलाड़ी उसको पकड़ सकते हैं।

खिलाड़ी चेक्फ काङखुल में अपने प्रतिद्वंद्वी के सामने रखे लक्ष्य को मारता है। यह लक्ष्य लाख का बना होता है। मारने से पूर्व खिलाड़ी को काङ पकड़कर खड़ा होना पड़ता है। खड़ा होकर वह बाएँ हाथ को जाँघों के बीच रखता है, दाहिने में पकड़ी काङ को घुटनों के बीच से अन्दर चेक्फ (लक्ष्य) पर फेंकता है फिर दौड़ता है। जब काङ लक्ष्य पर गिरे तो इसका मुख ऊपर होना चाहिए। यदि एक खिलाड़ी काङ को लक्ष्य पर नहीं मार सकता है तो उसके दल के अन्य खिलाड़ी क्रमश लक्ष्य पर काङ मारते हैं। दो चेक्फ के बाद एक लम्फा मारना आवश्यक है तब ही गोल माना जाता है। जब तक खिलाड़ी काङ को लक्ष्य पर मारता है, जिन्दा माना जाता है, परन्तु जब लक्ष्य को नहीं मार सकता है, तो वह मरा माना जाता है और वह अपनी जगह बैठ जाता है। एक दल के सभी खिलाड़ी जब मर जाते हैं तब दूसरे दल के खिलाड़ी क्रमश खेलते हैं। पुरुष और स्त्रियाँ अलग अलग या एक साथ यह खेल खेलते हैं एक मात्र घर में खेला जाने वाला खेल होने के कारण यह बहुत ही लोकप्रिय है।

लामचेल

कभी लामचेल या दौड़ अत्यन्त लोकप्रिय थी। इन दौड़ प्रतियोगिताओं का आयोजन जुलाई में किया जाता था। इनका आयोजन "थाना" (प्राचीन जिले) के आधार पर किया जाता था। हर थाना की एक निश्चित तिथि को इन दौड़ने की प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता था। उनमें विजयी प्रतियोगी अन्तिम प्रतियोगिता के लिए चुन लिए जाते थे। इन प्रतियोगिताओं में आधे मील की दूरी तय करनी पड़ती थी। राजाओं के शासन काल में 'लालूप प्रथा थी, जिसमें जनता को राजा और राज्य के लिए अपनी योग्यता के अनुसार भोजन के बदले निश्चित समय तक काम करना पड़ता था। यह कानून था। जो प्रतियोगी इन प्रतियोगिताओं में विजय प्राप्त करते थे, उन्हें लालूप से मुक्ति मिल जाती थी। प्रत्येक थाना प्रतियोगिता में तथा अन्तिम प्रतियोगिता में राजा तथा दरबारी सामन्त आदि उपस्थित रहते थे और विजेताओं को राजा की ओर से पुरस्कार प्रदान किए जाते थे।

पर्यटन स्थल

मणिपुर के प्रति पर्यटकों के आकर्षण के लिए प्रकृति ने ही अनेक अदभुत वस्तुओं की सृष्टि की है। ससार की कुछ दुर्लभ वस्तुएं प्रकृति ने मणिपुर के शृगार के लिए सँजोकर रखी हैं, जैसे—सिरोही पर्वत पर पाया जाने वाला सिरोही लीली पुष्प, सघाई नामक हिरण, लोकत्ताक झील मे तैरते द्वीप, यहाँ का स्वास्थ्यवर्द्धक वातानुकूलित जलवायु तथा वर्ष भर शस्य-श्यामल सुरम्य प्राकृतिक सौन्दर्य पर्यटको के लिए खुला हार्दिक निमत्रण है। मणि के समान उज्जवल एव चमकदार प्रदेश सैलानियों की आँखो को एक दावत का आमत्रण है।

प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ही यहाँ का समृद्ध सास्कृतिक सौन्दर्य भी पर्यटको का आकर्षण केन्द्र है। मणिपुर की घाटी मे बसनेवाले "मैतै" लोगों की अपनी समृद्ध और उच्च सस्कृति है। विश्व विख्यात मणिपुर नृत्य, स्वाँग एव लीलाएँ, नाटक, उत्सव एव त्योहार की अटूट शृखला, रग-बिरगी, वेश भूषा, घर-घर के आँगन में मदिर और उनमे चलते भजन कीर्तन नृत्य, दर्पण से चमकते स्वच्छ घर और उनके चारो ओर बने कुंज एव पुष्प वाटिकाएँ मणिपुर के सास्कृतिक वैभव हैं। यहाँ के निवासी आमोद-प्रमोद प्रिय हैं। कोई दिन ऐसा नही होता जब दिन के अतिम प्रहर मे खेल-कूद का आयोजन न हो। गाँव हो या नगर दर्शको की अपार भीड में पोलो, मुकना, युबी-लाकपी, खोङ-काङजे, शगोल-काङजे, काङशान्नबा आदि स्थानीय खेल चलते रहते [redacted] तो कहीं हॉकी, फुट-बाल आदि खेल आयोजित होते रहते हैं।

मैतै पुरुष गौर-वर्ण, हृष्ट-पुष्ट, मृदुभाषी, विनम्र, एव शिष्ट होते हैं। इनके वस्त्रो, जूतों तथा वाहनों, बर्तनों, घरो के साथ स्वभाव की स्वच्छता किसी भी

पर्यटक के मन में स्पर्धा जागृत करने में सक्षम है। कहीं भी चले जाइये मैले वस्त्र पहने एक भी पुरुष या स्त्री नहीं मिलेगी। पुरुष एवं स्त्रियों के दाँत मोती जैसे उज्ज्वल एवं चमकदार होते हैं। महिलाओं का शारीरिक सौन्दर्य देखते ही बनता है। सौन्दर्य के साथ एड़ी तक लहराती सुन्दर रेशमी केशराशि नारी सौन्दर्य का विशिष्ट आकर्षण है। महिलाएँ रंग बिरंगी सुन्दर एवं स्वच्छ वस्त्र



परिश्रमी भाग्य नारी

पहनती है तथा बुनती भी है। स्वच्छता एवं शालीनता के साथ साथ सामाजिक दृष्टि से मणिपुर की नारी जिस स्वतन्त्रता एवं समता की अधिकारी है उसकी समता भारत के अन्य प्रान्तों की महिलाएँ नहीं कर सकती हैं।

मणिपुरी के हाट बजार में क्रय विक्रय का काम अधिकांशतः महिलाएँ ही करती हैं। बाजारों में महिला दुकानदार अधिक हैं। गृहस्थी की सभी सामग्री भी महिलाएँ ही क्रय करती हैं। मैतै महिला राजनैतिक दृष्टि से भी

प्रबुद्ध एवं जागरूक हैं, किसी भी राजनैतिक जलूस का नेतृत्व महिलाएँ ही करती हैं। सड़कों पर विभिन्न प्रकार के आधुनिक वाहन चलाती हुई जितनी महिलाएँ मणिपुर में दिखाई देती हैं उतनी और कहीं नहीं। कार्यालयों, शिक्षण-संस्थाओं आदि में कार्यरत महिलाएँ पुरुषों से अधिक नहीं तो कम भी नहीं होंगी। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष की टक्कर लेते हुए भी मणिपुर महिला कुंठाहीन, निराभिमानी, आज्ञाकारी पत्नी और ममतामयी मां है। वह प्रातः-काल तीन बजे से रात्रि के नौ बजे तक अथक श्रम करती है और परिवार को व्यवस्थित रखती है। स्त्री-पुरुष बहुत ही धार्मिक प्रवृति के हैं। इनकी जीवन पद्धति, रीति-रिवाज एवं परम्पराएँ पर्यटकों के लिए रुचि कर हैं।

मैतै समाज का समाजवादी दृष्टिकोण अनुकरणीय है। किसी भी सामाजिक उत्सव में या संस्कार के अवसर पर सब पुरुष सफेद धोती कुर्ता पहनते है, तो महिलाएँ हल्के भगवा रंग का फनेक एवं चादर पहनती हैं। सभी एकही पंगत में बैठकर भोजन करते हैं कोई वर्ग या वर्ण भेद नहीं। पूर्ण समाजवाद जैसा व्यवस्था है जहाँ कोई घर में नौकर नहीं रखता है। स्वावलम्बन का पाठ कोई मणिपुर के जन जीवन से सीखे। यहाँ पर भिखारी खोजने से भी नहीं मिलेगा। क्योंकि मैतै समाज में सामाजिक सुरक्षा का अलिखित विधान है। प्रत्येक बस्ती या मोहल्ले के अपंग लोगों के लिए सामूहिक रूप से घर बना दिया जाता है। जिसमें सभी अपंग लोग रहते हैं तथा उन लोगों के भोजन की व्यवस्था उस बस्ती के लोगों का सामूहिक उत्तरदायित्व होता है। अतः भीख मांगने की प्रथा मणिपुर में आज भी अज्ञात प्रथा है। पद या आर्थिक स्थिति को श्रेष्ठता के स्थान पर केवल आयु के आधार पर सम्मान दिया जाता है। यहाँ का आर्थिक जीवन पूँजीपतियों द्वारा शासित नहीं है और कृषि तथा लघु तथा कुटीर उद्योग यहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय है। बंधुआ मजदूर जैसी प्रथा मणिपुर में कभी प्रचलित नहीं रही है। मजदूर के साथ भी समता एवं सद्भाव का व्यवहार किया जाता है। मणिपुर के समाज का दृष्टिकोण पूर्ण समाजवादी है।

मणिपुर की घाटी में मैतै लोग रहते हैं, जो वैष्णव है जबकि मणिपुर के पर्वतीय प्रदेश में 29 जन-जातियाँ रहती हैं। इन जनजातियों की अपनी-अपनी वेश-भूषा है और रंग-बिरंगे वस्त्रों के प्रति इनकी सुरुचि भी मैतै लोगों से कम नहीं है। प्रत्येक जनजाति की अपनी प्रथाएँ एवं परम्पराएँ तथा उत्सव त्यौहार हैं। आमोद-प्रमोद, नृत्य-गायन एवं खेल-कूद के प्रति इनकी भी गहरी अभिरुचि है। सामूहिक कृषि एवं सामूहिक दिनचर्या इन जातियों की विशिष्टता है।

मणिपुर की मैतै हो या जनजाति की महिला हाथ-करघे पर कपड़ा बुनने में दक्ष होती है। विवाह से पूर्व प्रत्येक युवती को कपड़ा बुनना सीख लेना अनिवार्य है। मणिपुर का मणिपुरी नृत्य, जनजातियों के लोक नृत्य और इनकी वेश-भूषा की कलात्मकता में यहाँ की उन्नति संस्कृति एवं सभ्यता की झलक



हुक्का पीती : दो महिलाएँ

स्पष्ट दिखाई देती है। मणिपुर के प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक सौन्दर्य को देखकर ही मणिपुर को पृथ्वी पर स्वर्ग का लघु संस्करण कहा गया है। मणिपुर को पूर्वी भारत का कश्मीर या स्विटजरलैंड भी कहा जाता है। मणिपुर भाषा के किसी प्राचीन कवि ने कहा है :

मणिपुरा सना-लैमायोल,
चिंगना कोयना-पंसाबा,
हाओना कोयना-पनगोकपा।
हे मेरे मणिपुर ! मुख्य स्वर्ण भू में सर्वश्रेष्ठ भूमि तुम्हारी

प्रकृति ने स्वय बनाई पर्वत-प्राचीर तुम्हारी

प्रकृति-पुत्र-पर्वत-सजग-प्रहरी तुम्हारे !

जो भी कहिए मणिपुर-मणिपुर ही है । यहाँ के पर्यटक स्थलो का अवलोकन किया जाए :

इम्फाल

मणिपुर की घाटी के केन्द्र में स्थित मणिपुर का सबसे बडा नगर एव राजधानी है । सास्कृतिक, व्यापारिक, राजनैतिक एव शैक्षिक गति विधियो का यह प्राचीन केन्द्र है । युमफाल (युम—घर तथा फाल—बनाना) शब्द से इम्फाल बना है, अर्थात जलप्लावन के पश्चात सर्व प्रथम यहीं घर बनाए गए थे । समुद्र तल से 705 मीटर की ऊँचाई पर स्थित इस नगर की लगभग डेढ लाख जनसख्या है । नगर 17.48 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र मे फैला हुआ है । नगर के बीचो-बीच ख्वाइरबन्द बाजार है, जो सम्भवत: देश का सबसे बडा महिला बाजार है, जिसमें केवल महिलाएँ ही कपड़े सब्जी, मछली आदि बेचते हुए देखी जा सकती हैं । व्यापार के अतिरिक्त यह महिलाएँ, भीड भरा कोलाहलपूर्ण रग-बिरगा बाजार अपनी अलग पहचान रखता है । थौगल बाजार, वीर टिकेन्द्रजीत रोड के दोनो ओर का बाजार तथा पावना बाजार, इम्फाल के प्रमुख बाजार हैं । जहाँ मणिपुरी वस्त्र एव हस्तकला की सामग्री मिलती है । व्यापार के अतिरिक्त ये महिलाएँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे पुरुष की प्रतिस्पर्द्धा करते हुए देखी जा सकती हैं, सडको पर साईकिल से कार तक चलाते हुए, कार्यालयो या खेतो में काम करते या नदी जलाशयो में मछली पकडते । पुरुष से जीवन के किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं है । यहाँ के बाजार में भीड लगी रहती है । विभिन्न प्रकार के वाहनो की सख्या भी बहुत अधिक है ।

इम्फाल नगर में निम्नलिखित स्थान दर्शनीय हैं ।

श्री श्री गोविन्द जी का मदिर

राजबाडी के निकट ही दो स्वर्ण गुम्बद-युक्त यह मदिर वैष्णव सस्कृति का जीता जागता प्रतीक है । यह दर्शनीय स्थल है । जहाँ पर होली, नट, बसत

आदि राज नृत्यों का आयोजन होता रहता है। मंदिर के पास ही राज निवास है जो राजवाड़ी के नाम से विख्यात है तथा यही आकाशवाणी केन्द्र भी है। दो गुम्बदवाले मंदिर बहुत कम पाए जाते हैं। मंदिर में तीन कमरे हैं जिनमें



2,568 मीटर ऊँचाई पर : सिरो लीसी पहाड़ का दुर्लभ लीली पुष्प

बीचवाले में श्री कृष्ण एवं रसेश्वरी, तथा बगल के कमरों में राम कृष्ण और जगन्नाथ स्वामी की मूर्तियाँ हैं। मंदिर के सामने आँगन के पार बहुत बड़ा मण्डप बना है जिसमें हजारों भक्त एक ही साथ बैठ सकते हैं।

महाबली ठाकुर का मंदिर

हनुमान जी का यह प्राचीन मंदिर इम्फाल नदी के तट पर बना है, जहाँ

प्रत्येक मंगलवार एवं शनिवार को भक्तजनों की भीड़ लगती है। हनुमान-जयंती के दिन यहाँ से प्रतिवर्ष रथ-यात्रा निकाली जाती है। मणिपुर में बन्दर केवल यहीं पाए जाते हैं। कुछ लोगों की मान्यता है कि यहीं पर कभी मोंगबाहनबा का मंदिर था।

श्री श्री विजय गोविन्द जी मंदिर

मन्त्री मयुम लैकाई में स्थित मन्त्री अनन्तशाह के द्वारा निर्मित श्री श्री विजय गोविन्द जी का मंदिर भी दर्शनीय स्थल है। यहाँ होली के बाद हुलबार के दिन रास नृत्य होता है। कामना से लाए गए कटहल के वृक्ष के दूसरे भाग से बनी मूर्ति की यहाँ स्थापना की गई थी। हुलबार के दिन की रास नृत्य की छवि कवियों द्वारा वर्णित वृंदावन की छवि उपस्थित करती है। कृष्ण गोप मंडली के साथ एक ओर तो दूसरी ओर राधा तथा गोपियाँ का दृश्य रहता है। उस समय पिचकारियों से रंग की बौछार, रास में भाग लेनेवालों की परम्परागत वेश-भूषा तथा सजावट दर्शनीय होती है। इसी मंदिर की परिक्रमा में हियाङ तान्नबा या नौका दौड़ प्रतियोगिता होती है।

युद्ध सैनिक स्मारक

डी० एम० कॉलिज के सामने द्वितीय विश्व युद्ध में इस क्षेत्र में मारे गए विदेशी ईसाई सैनिकों की स्मृति में एक स्मारक बना हुआ है। कुछ ही दूर इम्फाल उखरुल मार्ग पर भारतीय सैनिकों की याद में भी इसी तरह का एक स्मारक है। इन स्मारकों के रख रखाव का कार्य कॉमन वेल्थ वार ग्रेव्ज कमीशन के द्वारा किया जाता है। ये स्मारक अपनी एक रूपता एव पवित्रता के कारण दर्शनीय हैं।

लैगहामपाट पौधशाला

इम्फाल-दीमापुर मार्ग पर इम्फाल से 7 कि० मी० उत्तर में एक पौधशाला है। इसकी देखभाल मणिपुर सरकार का वन विभाग करता है। यहाँ 110 विभिन्न जातियों के वृक्ष लगाए गए हैं। यह पौधशाला दर्शनीय एव सुरम्य स्थल है।

काङला

कहते हैं कि जल-प्लावन के पश्चात काङला जो सबसे ऊँचा स्थल है जो सूखा रह गया था या सबसे पहले सूख गया था। काङला मणिपुर का सबसे पवित्र एवं पूजनीय स्थान माना जाता है। जहाँ भगवान शिव ने स्वयं पाखङबा को अपने उत्तराधिकारी के रूप में राजसिंहासन दिया था। पाखङबा के बड़े भाई को सनामही गृहदेवता के रूप में पूजे जाने का आशीर्वाद दिया था। अत, काङला पाखङबा के समय से ही मणिपुर की राजधानी है। पूर्व-ब्रिटिश-काल तक काङला मणिपुर के महाराजाओं की राजधानी रही है। आज भी यहाँ प्राचीन राज प्रासादों के अवशेष देखे जा सकते हैं। यहाँ प्राचीन महाराजाओं के नाम से बने स्मारक भी हैं।

सम्प्रति आसाम राइफल्स चतुर्थ वाहिनी के परिसर के मध्य यह स्थान है जिसके तीन ओर परिखा बना दी गई है। इस परिखा में समय-समय पर नाव तथा तैराकी प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है।

जवाहरलाल नेहरू मणिपुरी डाँस एकेडेमी

इम्फाल विश्वप्रसिद्ध मणिपुरी नृत्य का केन्द्र है और नेहरू डाँस एकेडेमी में इस नृत्य की व्यवस्थित कक्षाएँ होती हैं। देशी अथवा विदेशी अतिथि जब मणिपुर में आते हैं तो यहाँ नृत्य अवश्य देखते हैं।

जन्तुघर

इम्फाल नगर के पश्चिम में 6 कि० मी० की दूरी पर एक शानदार बगीचे में जन्तुघर बना है। इसमें संसार के विभिन्न भागों के जन्तु देखे जा सकते हैं किन्तु इसका प्रमुख आकर्षण मणिपुर का संगाई हिरण है।

पोलो ग्राउण्ड

अंग्रेजों के जमाने से यहाँ पोलो खेला जाता था और आज भी यहाँ विभिन्न खेल-खेले जाते हैं। किन्तु इस मैदान का ऐतिहासिक महत्व है। 13 अगस्त 1891 के दिन यहीं वीर टिकेन्द्रजीत तथा जनरल थाङल को हजारों लोगों की उपस्थिति में फाँसी पर लटकाया था। अत यहाँ एक ऊँची शहीद मीनार उन स्वतन्त्रता सेनानियों की स्मृति में बनवाई गई है। इसके पास ही संग्रहालय है, जहाँ प्राचीन वस्तुओं का संग्रह है।

लम्फेल पाट

लांगोल चिंग अर्थात झाड़ियों से भरा पर्वत और उसके नीचे कभी लम्फेल नामक पाट (झील) थी । उस झील का कोम्बीर्ल नामक पुष्प बहुत प्रसिद्ध था। अब झील के स्थान पर सरकारी कार्यालय व सरकारी कर्मचारियों के निवास स्थान बन गए हैं।



अमर शहीद वीर टिकेन्द्र जीतसिंह जिन्हें 13 अगस्त 1891 को थाङ्गल जनरल के साथ फाँसी दी गई

लम्फेल पाट के निकट सगोयगन्द अर्थात घोड़ा बाँधने वाला स्थान है। कहते हैं कि महाभारत युद्ध के समाप्त होने पर पाडवों का राजसूय यज्ञ का घोड़ा यहाँ पहुँचा तो बभ्रुवाहन ने उसे यहाँ बाँध दिया था और उसको छुड़वाने के लिए बभ्रुवाहन तथा अर्जुन के बीच ताकयेल स्थान पर युद्ध हुआ था। किन्तु

कुछ विद्वान इस घटना को कपोल-कल्पित एवं असत्य मानते हैं।

लांगोलचिंग के पास ही 'मगारव-नानबी' है। जहाँ कभी आत्मघात करने वालों की लाशें फेंकी जाती थी।

पुरूक सोबी

कोइया बस्ती के निकट पुरूक सोबी नामक स्थान है। यहाँ फव्वारे की भाँति भूमि से प्रकृत रूप से जलधारा निकलती है। इस स्थान से साथ कई किंवदंतियाँ जुड़ी हैं। यह भी कहा जाता है कि इसके जल में स्नान करने से रोगी रोग मुक्त हो जाता है।

कैना (कायना)

इम्फाल के उत्तर पूर्व में 29 कि० मी० दूरी पर स्थित एक ऐतिहासिक पर्वतीय स्थल है। महाराजा भाग्यचन्द्र ने श्री श्री गोविन्द जी की आज्ञानुसार इसी स्थान से कटहल का वृक्ष कटवाकर उससे श्री श्री गोविन्द जी के चार विग्रह बनवाए थे। यहाँ एक मंदिर और विश्राम गृह है। आसपास की पहाड़ियों पर अनानास के पौधे लगाने से इसके सौन्दर्य में चार चाँद लग गए हैं।

काब्रू पर्वत

कहते हैं जलप्लावन के समय मणिपुर निवासी काब्रू पर्वत पर चढ गए थे और जल सूखने पर फिर उतर आए थे। इस प्रकार काब्रू पर्वत सबसे पूजनीय एवं पवित्र स्थान माना जाता है। इसका पौराणिक महत्व है। प्रतिवर्ष नववर्ष के उपलक्ष्य में धार्मिक प्रवृति के लोग काब्रू पर्वत पर 6-7 घन्टे की दुर्गम चढाई चढते हैं। कहा जाता है कि शिखर पर पहुँचकर मनुष्य अपनी थकान भूल जाता है तथा उसको आत्मिक शांति प्राप्त होती है। शिखर पर एक लम्बी सी झील है जिसमें जल के अनेक जीव जतु पाए जाते हैं। वहाँ लकड़ी से बने दो कमरे हैं जहाँ लोग ठहर सकते हैं। इस पर्वत पर स्त्री-पुरुष का आलिंगन वर्जित है। कहते हैं यहाँ आलिंगन करनेवाले युगल का अनिष्ठ हो जाता है।

लांगथबाल-कुँज कांचीपुर

भारत-बर्मा मार्ग पर 8 कि० मी० दूरी पर लांगथबाल नामक स्थान है। महाराज भाग्यचन्द्र ने लांगथबाल की पहाड़ी पर एक विश्राम गृह बनवाया था।

वे इसको एक कुंज का रूप देना चाहते थे अत एक बड़ा जलाशय बनवाया। जिसके किनारे कटहल के वृक्ष से बनी कृष्ण की मूर्ति के पास उनकी पुत्री सिजालंइरौबी को राधा के रूप में बैठाया गया। यहीं प्रथम बार उसने रास-नृत्य किया तथा आजन्म कुमारी रही। यह भी कहा जाता है कि गरीबनिवाज नामक मणिपुर के महाराज ने सर्वप्रथम यहाँ एक विश्राम करने हेतु कुटिया बनवाई थी। भाग्यचन्द्र के बाद महाराज गंभीर सिंह ने भी इसके विकास का प्रयत्न किया था। आज भी इसकी पहाड़ी पर भग्न अवशेष देखे जा सकते हैं। अब पहाड़ी के नीचे की समतल भूमि पर मणिपुर विश्वविद्यालय के भवन बनाए गए हैं।

वाईथो

वाईथो झील के मध्य एक सुन्दर विश्राम गृह बना हुआ है। झील के चारों तरफ का प्राकृतिक सौन्दर्य मनमोहक है। यहाँ के अनानास बहुत प्रसिद्ध हैं। वाईथो पाट इम्फाल से 16 कि० मी० की दूरी पर स्थित है। यह मछली पकड़ने का महत्वपूर्ण स्थान है और इस झील में पाई जाने वाली नातोन मछली बहुत स्वादिष्ट होती है।

खूनी पर्वत

टिड्डिम मार्ग पर इम्फाल से 16 कि मी की दूरी पर यह एक छोटा सा पर्वत है जिसे लोकपा चिंग भी कहा जाता है। इस स्थान पर द्वितीय विश्वयुद्ध में जापानी एवं ब्रिटिश सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ था और बहुत से सैनिक मारे गए थे अत इस पर्वत को लोग खूनी पर्वत भी कहते हैं।

विशनपुर

इसका प्राचीन नाम लमागयोग (लमहौंग—मैदान का,—योंग—दरवाजा) बताते हैं, तो कुछ लोग लमलोंग (एक जाति) योंग कहते हैं। मणिपुर का यह प्राचीन नगर टिड्डिम मार्ग पर ही इम्फाल से 27 कि मी दूरी पर पर्वत श्रृंखला के चरणों में बसा है। यहाँ पन्द्रहवीं शताब्दी का एक विष्णु मंदिर है जो विशिष्ट प्रकार छोटी ईंटों से बना हुआ है। ईंटों को चीन की पद्धति से बनाई गई ईंटें कहा जाता है।

निंथौखोंग

लोकताक परियोजना के पास एक छोटा गाँव निंथौखोंग है। यहाँ

श्री गोपनाथ जी का मंदिर बना हुआ है यहाँ कायना के बटहल वृक्ष के तीसरे अंश की मूर्ति की स्थापना की हुई है। मंदिर के प्रागण में समय-समय पर आयोजित किए जाने वाले नृत्य भी दर्शनीय हैं।

लोकत्ताक परियोजना

इम्फाल से टिड्डम मार्ग पर 36 कि. मी. की दूरी पर निंगथोखोंग नामक गाँव के पास बहुमुखी परियोजना का निर्माण किया गया है। इसकी दो कि. मी. लम्बी सुरंग देखने योग्य है। इस परियोजना के द्वारा जल विद्युत उत्पन्न की जा रही है। सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध हो सकी हैं। इससे बाढ़ पर नियंत्रण कर सके हैं, तथा कई बहुमूल्य भूमि को कृषि योग्य बनाया जा सका है। लेमाटाक जल विद्युत घर तथा वहाँ का विश्राम गृह एवं पर्वत की गोद में बसी बस्ती पर्यटकों के लिए आकर्षण केन्द्र है।

मोइरांग

इम्फाल से दक्षिण में 45 कि० मी० की दूरी पर लोकत्ताक झील के किनारे मोइराङ नामक पौराणिक एवं ऐतिहासिक नगर है, जो स्वतंत्रता संग्राम का पुनीत तीर्थ स्थल है। यह मणिपुर का प्राचीन पौराणिक नगर है। यहीं खम्बाथोइबी नामक पौराणिक प्रेमी-युगल का जन्म हुआ था। यहाँ थाङजिङ का मंदिर है जिसके आँगन में लाइ हराओबा नृत्य होता है। थाङजिङ नामक पौराणिक देवता का निवास-स्थान भी मोइराग माना जाता है, जो मणिपुर के अत्यंत आदरणीय एवं पूजनीय देवता हैं। उनके सम्मान में प्रत्येक मई महीने में पारम्परिक नृत्य "मोइराग लाइहरोबा" का आयोजन किया जाता है। इस उत्सव के अवसर पर शत-शत, नर-नारी थाङजिङ देवता के सम्मान में गीत गाते हैं तथा नृत्य में प्राचीन शानदार पोशाक पहन कर भाग लेते हैं, जिससे नृत्य एवं मधुर संगीत का आनन्द बहुत बढ़ जाता है। मणिपुर की समृद्ध संस्कृति एवं सभ्यता को मोइराङ का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्राचीनकाल में यह नगर सभ्यता, संस्कृति कला एवं राजनीति का प्रमुख केन्द्र था।

आधुनिक काल के भारतीय इतिहास में भी इसका गौरव पूर्ण स्थान है क्योंकि 14 अप्रैल 1944 के दिन आजाद हिन्द फौज ने मोइराङ पर कब्जा कर लिया था। यह वह पुनीत भारत भूमि है जिसे सर्वप्रथम स्वतंत्र होने का गौरव प्राप्त है। मोइराङ का डाक बंगला आजाद हिन्द फौज का मुख्यालय बना था और इस पर गौरव से तिरंगा झण्डा फहराया गया था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् यहाँ आजाद हिन्द फौज का एक स्मारक बनाया जा रहा था जो आज भी अधूरा पड़ा है किन्तु इसके एक भाग में संग्रहालय है जहाँ आजाद हिन्द फौज के दुर्लभ-चित्र, वेश-भूषा तथा हथियार सुरक्षित हैं तथा एक छोटा-सा पुस्तकालय भी वहाँ है। स्मारक भवन के सामने एक छोटा-सा बगीचा है जिसके एक ओर नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की कांस्य प्रतिमा है तो दूसरी ओर नेताजी द्वारा 1945 ई० में सिंगापुर में बनवाए गए स्तूप की प्रतिकृति है।



खोङ्जोम युद्ध के नेता व्रजबासी पाना

मोइराङ लगभग एक हजार वर्ष पूर्व मोइराङ राजाओं की राजधानी थी। यहाँ मणिपुरी सभ्यता, संस्कृति, कला एवं धर्म का विकास हुआ।

लोकत्ताक झील

उत्तर भारत की मीठे पानी की यह सबसे बडी झील है। वर्षा ऋतु में इस झील का क्षेत्रफल बहुत बढ जाता है और वर्षा ऋतु के बाद इसका जल सिमटता जाता है और जल क्षेत्र कम रह जाता है। लोकत्ताक झील मणिपुर की प्रकृति की अनुपम भेंट है। इसमें विभिन्न प्रकार की जल वनस्पति पाई जाती है। प्रत्येक ऋतु में लोकत्ताक में भिन्न-भिन्न प्रकार के पुष्प खिलते हैं जो इसकी शोभा को और भी बढा देते हैं। इस जल-वनस्पति से फल फूल प्राप्त होते हैं जो सब्जी तरकारी तथा चटनी बनाने के काम आते हैं। झील में विभिन्न प्रकार की मछलियाँ पाई जाती हैं।

लोकत्ताक झील के तैरते द्वीप ससार की अनुपम वस्तु है। थाङा और कराङ नामक दो द्वीप झील के मध्य स्थित हैं, जहाँ सुन्दर बगीचे हैं और इन द्वीपों से बशंक सुरम्य प्राकृतिक सौन्दर्य का अवलोकन कर सकते हैं। चारों ओर ■ पर्वतो तथा वनस्पति का थल-जल प्रतिबिम्ब इन द्वीपों में बैठकर देखा जा सकता है। झील के बीच एक छोटे से पर्वत पर सेंदरा नामक पर्यटक विश्राम-गृह बना हुआ है, जिसके चारो ओर चन्दन के वृक्ष लगे हैं। यहाँ पर्यटकों के लिए नौका-विहार की सुविधा भी उपलब्ध है। सेंदरा से क्षितिज का आलिंगन करती अपार जल राशि उसमे तैरती छोटी-छोटी नावें, नावो के द्वारा झील के वृक्षस्थल को चीरकर आगे बढने पर जल मे बनते भंवर, तैरते द्वीप, रंग-बिरगी जल-वनस्पति, झील के किनारे के हरे-भरे खेत एव घास के मैदान, शरद ऋतु में साइबेरिया से उडकर आने वाले पक्षियो की गगन मे कलरव करती पक्तियाँ एव झील के जल मे तैरता पर्वतीय प्रतिबिम्ब लुभावनी एव मनमोहिनी दृश्यावली है। नाविकों का पतवारो के सगीत के साथ उभरता स्वर और उसकी प्रतिध्वनि इस सपूर्ण वातावरण को सजीव बना देते हैं।

कैंबुल लमजाओ

कैंबुल लामजाओ मणिपुर का राष्ट्रीय अभयारण्य है और एक दलदली द्वीप है जिस पर सरकडो का घना जगल है। ससार का एक विशिष्ट एव दुर्लभ जाति का बारहसिंगे के सीगो वाला सघाई नामक हिरण जो प्रकृति की अनुपम देन है, यहाँ सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त जगली सुअर, चीते आदि वन्य प्राणी भी देखे जा सकते हैं। पर्यटको के लिए सरकण्डे के वनों से आच्छादित यह दलदली द्वीप प्रमुख आकर्षण का केन्द्र है।

चूराचाँदपूर

इम्फाल से टिड्डिम मार्ग पर 60 कि० मी० की दूरी पर मणिपुर के भूत-पूर्व महाराजा के नाम से बसाया गया पर्वतीय जन-जातियो का कस्बा है। यह कस्बा दक्षिण जिले का मुख्यालय है और अनागा-जनजातियो की संस्कृति एवं सभ्यता का प्रतिनिधित्व करता है।

माओ

राष्ट्रीय मार्ग 39 पर इम्फाल दीमापुर के बीचोंबीच मणिपुर और नागालैण्ड की सीमा पर समुद्रतल से 1788 मीटर की ऊँचाई पर माओ नामक कस्बा बसा है। यह राष्ट्रीय मार्ग पर सर्वोच्च स्थान है। अपने परम्परागत हथियारो से सजे लम्बे कद के हृष्ट-पुष्ट माओ जाति के नागा यहाँ देखे जा सकते हैं। माओ जाति की रंग-बिरंगी वस्त्रो में सजी सुन्दर महिलाएँ भी दर्शनीय हैं। ऊँचाई के कारण यह स्थान सदा ठण्डा रहता है।

काडचूप

इम्फाल तमिंगलौंग मार्ग पर इम्फाल पश्चिम मे 16 कि० मी० की दूरी पर स्थित पर्वतीय दर्शनीय स्थल है। यहाँ पर लोग पिकनिक करने आते हैं।

तमिंगलौंग

यह तमिंगलौंग जिले का मुख्यालय है। यह ऊँचा पर्वतीय स्थल है, जहाँ बहुत मीठा सतरा पैदा होता है। यहाँ पर रोंगमई तथा कबुई जन जाति के लोग रहते हैं।

टेंगनौपल

भारत-बर्मा मार्ग का सर्वोच्च पर्वतीय स्थल है, जहाँ से मणिपुर घाटी का संपूर्ण दृश्य देखा जा सकता है। टेंगनोपल इम्फाल से 69 कि० मी० दक्षिण में स्थित है। यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शनीय है जहाँ तेज हवा चलती रहती है। टेंगनौ का अर्थ काँटेदार पौधा होता है।

पल्लेल

पल अर्थात् दीवार और लेल का अर्थ है सर्वश्रेष्ठ। यह इम्फाल से

55 कि मि की दूरी पर स्थित है और मणिपुर की घाटी का दक्षिण दिशा का अंतिम ग्राम है। यहाँ से पर्वत शृंखलाएँ आरंभ होती हैं। यह भारत की वह पुनीत भूमि है जिस पर कर्नल लक्ष्मीनायन के सेनापतित्व में आजाद हिन्द फौज ने अधिकार करके इसे स्वतंत्र करा दिया था।

मोरे

मणिपुर के दक्षिण पूर्व में इम्फाल से 110 कि० मी० की दूरी पर बर्मा की सीमा पर बसा छोटा-सा गाँव है। मोरे से कुछ दूर बर्मा की सीमा में टामू नामक कस्बा है जहाँ बर्मा की सभ्यता एवं संस्कृति देखी जा सकती है। ऊँचे मचानों पर बने मकान, बौद्ध मठ तथा वृक्षों का आलिंगन करती लताएँ बर्मा की विभिन्नता को प्रकट करती हैं।

सुगनू

दक्षिण के मैदान के अंतिम छोर पर स्थित सुगनू नामक गाँव बहुत ही ही सुन्दर है। इसमें एक प्राचीन मंदिर है। हाल ही में अनानास व ओक लगाने से इसका प्राकृतिक सौन्दर्य और बढ़ गया है।

खौपम

खौपम में पर्वत पर बने विश्राम गृह से छोटी-सी खौपूम घाटी का प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शनीय है। लगभग 21 वर्ग कि मी की यह एक चपटी घाटी है, इसकी समुद्रतल से ऊँचाई 262 मीटर है। यह पुरानी कछार सड़क पर स्थित है। इससे कुछ ही दूरी पर एक सुन्दर जल प्रपात है। प्रकृति का आनंद लेने के लिए यह एक आदर्श स्थान है।

खोंगजोम

भारत बर्मा मार्ग पर इम्फाल से 37 कि. मी की दूरी पर स्थित वह ऐतिहासिक स्थल है जहाँ मेजर जनरल ब्रजवासी पावना के सेनापतित्व में मणिपुरी सैनिकों ने अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता की। रक्षा के लिए 23 अप्रैल 1891 ई के दिन अपने प्राणों की बाजी लगा दी। जब तक उनका अंतिम सैनिक जीवित था अंग्रेजों की बर्मा से आने वाली अंग्रेज सेना को रोके रहा। लेफ्टीनेंट ग्राण्ट जो इस युद्ध में स्वयं घायल हुआ था, ने भी अपने शत्रु के साहस एवं शौर्य की प्रशंसा की है। इस पर्वत के नीचे जहाँ युद्ध हुआ था अब एक भव्य स्मारक बनाया गया है और प्रत्येक 23 अप्रैल खोंगजोम दिन के

रूप में मनाया जाता है और यहाँ लोग स्वतंत्रता प्रेमियों को श्रद्धांजलि अर्पित करने आते हैं। यद्यपि इन वीरो को सफलता नही मिल सकी किन्तु उनके स्वाधीनता प्रेम की याद यह ऐतिहासिक स्थल युगों-युगो तक दिलाता रहेगा।

उखरूल

इम्फाल पूर्व में समुद्र तल से 1900 मीटर की ऊँचाई तथा 83 कि. मी. की दूरी पर स्थित सुन्दर पर्वतीय छोटा-सा कस्बा है जो पूर्वी जिले का मुख्यालय भी है। इसकी ऊँचाई शिमला जितनी है और बहुत ठंडा स्थान है। यहाँ सदा मेघ-घटाएँ छाई रहती हैं और सूरज से आँख-मिचौनी खेला करती हैं। यह तांखुल नामक योद्धा जनजाति का केन्द्र स्थान है।

उखरूल के पूर्व में 2568 मीटर की ऊँचाई पर सिरोही पर्वत है, जहाँ संसार का एक दुर्लभ जाति का पुष्प सिरोही लीली खिलता है। प्रकृति ने मानो मणिपुर के उन्नत-भाल पर अपने ही हाथों सिरोही लीली के रूप में कुम-कुम बिन्दी लगा दी है। उखरूल से 10 कि. मी. दूरी पर दर्शनीय पर्वत कंदराएँ हैं।

चसाद

भारत बर्मा सीमा पर बसा चसाद एक सुन्दर पर्वतीय ग्राम है जहाँ से भारत की ओर देखने से देवदार के सघन वृक्ष कुंजो की क्रोड़ में बसे गाँव नव-जात पक्षी शावक से दृष्टिगोचर होते हैं। जो बर्मा की ओर देखने पर चिदविन नदी की उज्जवल जलधारा दिखाई देती है। सूर्योदय के पूर्व की अरुणिमा बिखरने के साथ ही पर्वतों के मध्य स्थित गहरी घाटियाँ दुग्ध धवल जलधारा के कल-कल निनाद करते जलस्रोत, वर्षा के जल से सद्यस्नात पर्वतमालाएँ, सीढ़ीदार खेत, उनमें लहराते धान के पौधे और उनमें बहता जल अभूतपूर्व दृश्यावली है। चसाद का प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शनीय है।

यातायात एवं परिवहन

मणिपुर चारो ओर से पर्वतो से घिरा राज्य है। अत: यहाँ आवागमन अज्ञातकाल से विकट समस्या रही है। यातायात एवं सचार माध्यम मनुष्य सामग्री एव विचारो के आने-जाने में सहायक होते हैं। यातायात, परिवहन एवं सचार साधनो को इसीलिए देश की शिराएँ कहा जाता है, जो उसको जीवन देती हैं। विषम धरातल, पर्वत शृंखलाओ के घेरे, भूस्खलन और घने जंगलो के कारण मणिपुर में यातायात एव परिवहन की सुविधाओ का विकास सभव न हो सका। यहाँ की नदियाँ पर्वतीय हैं जिनमे बारह महीने पानी नही रहने और लघु आकार के कारण इनका जलमार्ग के रूप में उपयोग संभव नहीं है। भूस्खलन के कारण मणिपुर मे रेलमार्ग का निर्माण भी संभव नही हो सका है। मुख्य रूप से केवल सडक मार्ग ही यातायात एवं परिवहन के लिए एक मात्र साधन है। वायुमार्ग और सड़कें ही मणिपुर को देश के अन्य भागो से जोडती हैं।

सड़कें

सड़को को आधुनिक सभ्यता की महत्वपूर्ण निशानी माना जाता है। सडको की सख्या तथा उनकी स्थिति से किसी क्षेत्र के जीवन के स्तर का पता चलता है। मणिपुर का 9/10 भाग पर्वतीय है। इस पर्वतीय प्रदेश में सडकें ही यातायात एव परिवहन का मुख्य सस्ता और सरल साधन है।

प्राचीनकाल में मणिपुर यातायात और परिवहन के भागो से चीन और भारत को जोडने का उल्लेख इतिहास में उपलब्ध है। 550 ईसवी पूर्व शाक्य वश के धारराजा के मणिपुर में बसने तथा बर्मा के उत्तरी भाग को जीतने का विवरण बर्मा के राजवश के इतिहास मे उपलब्ध है। जी. ई. हार्वे ने बर्मा के

इतिहास में लिखा है कि ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी में चीन का रेशम मणिपुर के रास्ते अफगानिस्तान तक ले जाया जाता था। भारत के क्षत्रिय राजा मणिपुर के रास्ते ही बर्मा तक पहुँचे थे। रामायण और महाभारत काल में भी मणिपुर का भारत के अन्य भागों से जुड़ा होने का वर्णन इन दोनों महाकाव्यों में उपलब्ध है। प्राचीन काल से ही मणिपुर मुख्य स्थल मार्ग पर रहा है।

वर्तमान तामलुक (ताम्रलिप्त—प बंगाल) से मांडले तक का मार्ग भी मणिपुर से गुजरता था तथा विष्णुपुर (विशनपुर) नामक मणिपुर की बस्ती इस मार्ग का पड़ाव स्थल था। इस मार्ग को मणिपुर में कछार मार्ग के नाम से जाना जाता है। यह मणिपुर की जीवन रेखा के समान थी। 1825 ई. में बर्मा से लड़ने जब ब्रिटिश सेनाएँ इस मार्ग से निकली तो इस मार्ग की बहुत खराब दशा थी। उस समय ब्रिटिश सेना को इस दुर्गम मार्ग पर जन धन की पर्याप्त हानि उठानी पड़ी। परिणामस्वरूप इस मार्ग को सुधारने की आवश्यकता अनुभव की गई। 1833 ई. में मणिपुर के राजा एवं ब्रिटिश सरकार के बीच संधि हुई और 1833 में इस मार्ग पर सड़क बनाने का कार्य आरंभ किया गया और 1844 ई. में यह सड़क बनकर तैयार हो गई। यद्यपि यह सड़क पैदल यात्रियों तथा सामान लदे पशुओं के लिए उपयुक्त थी तथापि सकरी होने के कारण इस पर भारी वाहनों का आवागमन संभव न था। इसलिए 1891 में इम्फाल-दीमापुर सड़क का निर्माण किया गया। उस समय से यही मणिपुर की जीवन रेखा है। क्योंकि दीमापुर रेलवे स्टेशन भी है और आज भी यह मार्ग कछार मार्ग से सुगम है। कछार मार्ग खोपम, कलाइ नामक स्थानों पर होता हुआ जिरिबाम तक जाता है और मणिपुर को सिलचर से जोड़ता है। इस मार्ग पर सवारी या मालवाहक गाड़ियों का आवागमन बहुत कम है। यातायात के यांत्रिक साधनों के मणिपुर पहुँचने से पूर्व घाटी के लोग बैलगाड़ी से सामान लाते ले जाते थे और पर्वतों में रहने वाले लोग सिर पर बोझ उठाते थे। आज भी कई मणिपुर के ऐसे गाँव हैं, जहाँ से लोग पैदल सिर पर सामान उठाकर आते हैं।

मणिपुर की आर्थिक स्थिति की प्रगति बिना सड़कों के निर्माण के संभव नहीं है। यह क्षेत्र अभी तक अछूता है और इसकी भूमि में अपार संभावनाएँ छिपी हुई हैं। उन संभावनाओं को खोज निकालने व उनका उपयोग करने के लिए सड़क निर्माण ही यातायात का एक मात्र सस्ता साधन है। क्योंकि रेल मार्ग बनाना तो यहाँ संभव नहीं है, इसका कारण यह है कि यहाँ की भूमि रेलमार्ग के लिए उपयुक्त नहीं है। सड़कों द्वारा ही मणिपुर की उर्वर भूमि का पूर्ण उपयोग संभव हो सकता है तथा इस क्षेत्र का सामाजिक एवं आर्थिक

उत्थान सभव है। सडको के विकास व सुगम यातायात के द्वारा मणिपुर को राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा से भी जोडा जा सकता है। भावात्मक एकता के लिए भी सडक निर्माण आवश्यक है। मणिपुर की आर्थिक दशा मे क्रांतिकारी परिवर्तन सडको द्वारा ही सभव हो सकता है।

1955-56 मे मणिपुर में 960 कि. मी. सडकें ही थी जो बीस वर्ष बाद 1976 ई मे 3,493 कि मी. हो गई। वास्तव में मणिपुर के सदर्भ मे तो यह वृद्धि 264 प्रतिशत हुई किन्तु राष्ट्रीय स्तर पर इस वृद्धि का महत्व गौण ही रहा। छठी पचवर्षीय योजना के प्रारभ मे प्रति 100 कि. मी. मे से 6 4 कि मी भाग पर ही सडकें थी। जबकि राष्ट्रीय स्तर 20 कि. मी था। कच्ची और पक्की सडको को मिलाकर भी मणिपुर म सडकें बहुत कम हैं।

मणिपुर स राष्ट्रीय माग 39 गुजरता है, जो इसकी राजधानी को भारत के अन्य राज्यो से जोडता है। राज्य मार्ग भी हैं, जो प्रत्येक जिले के मुख्यालय को राजधानी स तथा पडोसी राज्यो व अपने राज्य के मुख्यालयो से जोडता है। गाँवो को जोडन वाली सडकें भी बनाई गई हैं। इन सबसे प्रमुख सडक राष्ट्रीय मार्ग 39 है, जो दीमापुर से मोरे तक जाता है। इसी मार्ग के द्वारा भारत के अन्य मार्गों से यातायात समव है। प्राचीन कछार मार्ग का नव कछार मार्ग बना दिया गया है यह राज्य मार्गों मे प्रमुख है। अब यह मार्ग पक्का बना दिया गया है तथा इसको पहले की अपेक्षा अधिक चौडा व सीधा बनाया गया है। यह मार्ग इम्फाल से जिरिबाम तक 224 कि मी लम्बा है। सकटकाल में यह मार्ग राष्ट्रीय मार्ग 39 के विकल्प के रूप में उपयोगी है।

टिड्डिम मार्ग जो इम्फाल से बर्मा के टिड्डिम नामक स्थान को जोडता है, द्वितीय विश्व युद्ध मे बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा चुका है। इसी मार्ग से बर्मा से आजाद हिन्द फौज मणिपुर में घुसी थी और इम्फाल से 15 कि मी दक्षिण तक पहुँची थी। इस मार्ग पर विशनपुर, मोइराङ तथा चुराचांदपुर नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान स्थित हैं।

इम्फाल उखरूल मार्ग इम्फाल से ताँखुल जाति के प्रमुख केन्द्र उखरूल को जोडता है। इम्फाल तमिंगलौंग मार्ग मणिपुर पश्चिम के मुख्यालय तमिंगलौंग को प्रान्त की राजधानी से जोडता है। राज्य के अन्य प्रमुख मार्ग हैं—इम्फाल सुगनू मार्ग, इम्फाल यारिपोक मार्ग, इम्फाल काङ्चुप मार्ग, इम्फाल सगोलबद मार्ग तथा चुराचांदपुर थानलोन मार्ग जो तिपाई मुख मार्ग का एक भाग है। तिपाईमुख मार्ग पूरा होने पर आइजल (मिजोरम की राजधानी) से इम्फाल सडक मार्ग से जुड सकेगा :

इन सडकों पर बसें व ट्रको के अतिरिक्त जीप और कारो तथा अन्य यातायात के तीव्रगामी साधन चलाए जाते हैं। केन्द्रीय सरकार के अर्द्ध सैनिक सीमा सडक संगठन के द्वारा भी मुख्य सडकों का निर्माण किया जा रहा है। उत्तर पूर्वी परिषद भी इस क्षेत्र मे सडको के विकास पर पूरा ध्यान दे रही है। अपेक्षित मार्गों का निर्माण कार्य पूरा होने पर मणिपुर में औद्योगिक विकास की संभावनाएँ बढ जाएगी जो मणिपुर को आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बनाएगी तथा राष्ट्रीय मुख्यधारा के अधिक निकट ला सकेगी।

जलमार्ग

मणिपुर की नदियाँ नावें चलाने के लिए उपयुक्त नही हैं, इसलिए जलमार्ग यातायात को गौण ही कहा जाएगा। मणिपुर के दक्षिणी जिले मे तिपाई नदी और बराक नदी के मिलने के स्थान पर कुछ दूरी तक नावें चलती हैं। बराक की एक अन्य सहायक जिरि नदी तिपाईमुख उपखड के लिए जिरिबाम नामक नदी के किनारे स्थित स्थान तक सवारी और माल नौकाओ से लाया जाता है।

इम्फाल, थौबाल और नम्बोल नदियो में भी वर्षाऋतु मे जब काफी पानी होता है, नावो के सहारे यातायात एव परिवहन कार्य किया जाता है, किन्तु बहुत कम दूरी तक ही यह सम्भव है। लोकत्ताक में तैरते द्वीपो पर रहने वाले मछुआरों के लिए नावो का बहुत महत्व है, क्योंकि वे आवागमन के लिए इन्ही पर निर्भर हैं। पहले लोकत्ताक के किनारे स्थित मोइराङ से कुभी द्वीप तक सडक नहीं थी, उस समय नावें ही वहाँ तक पहुँचने का एक मात्र सहारा थी।

वायुमार्ग

मणिपुर के जीवन में वायुमार्ग की विशेष भूमिका है। आवागमन के लिए वायुमार्ग की भूमिका स्थल मार्ग से कम नहीं है। लगभग उतने ही लोग वायुमार्ग से इम्फाल आते या जाते हैं, जितने स्थल मार्ग से आते जाते हैं। इडियन एयर लाईन्स कोरपोरेशन की कलकत्ता से सिलचर होते हुए इम्फाल तथा दिल्ली से पटना, बागडोगरा (सिलीगुडी-बगाल) गोहाटी होते हुए इम्फाल तथा वापसी, बोइंग 737 की विमान उडान प्रतिदिन है। जबकि दीमापुर से इम्फाल वायुदूत विमान की प्रति सप्ताह मे तीन उडाने होती हैं। ये विमान इम्फाल मे तुलिहाल हवाई अड्डे (जो इम्फाल से 7 कि मी. दक्षिण में है) पर उतरते हैं तथा उड़ते हैं।

यहाँ लोगो में वायु मार्ग यात्रा की मानसिकता विकसित हो चुकी है। जबकि यह यात्रा बहुत ही महगी पडती है तब भी लोग वायुमार्ग से यात्रा करना अच्छा समझते हैं। प्रतिदिन की उड़ानो के लिए सदैव पूर्व आरक्षण आवश्यक होता है, वरना जगह मिलना सभव नही है। वायु यात्रा की मानसिकता की लोक प्रियता इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि यात्री धनी-मानी व्यक्ति ही नहीं बाहर के कुली मजदूर तक होते हैं। भारत के अन्य प्रान्तों के नौकरी पेशा लोगो का कहना तो यह है कि वे जो कुछ कमाते हैं उसका एक बहुत बडा भाग वायुमार्ग यात्राओ पर खर्च कर देते हैं। प्रतिदिन समाचार पत्र तथा डाक भी वायुयान से आती है। वर्षा ऋतु में मानसून के सक्रिय होने के पश्चात् कई बार इम्फाल की उडाने रद्द हो जाती हैं।

मणिपुर में यातायात और परिवहन की स्थिति के विवेचन से स्पष्ट है कि यहाँ यह समस्या है। मणिपुर रेलमार्ग से नही जोडा जा सका है, अत यहाँ सडको से ही ट्रकों में सामान आता है जो काफी महँगा साधन है। मणिपुर को खाद्यान व दालो के अतिरिक्त सभी चीजें बाहर से मगवानी होती है। दालें, तिलहन, पैट्रोलियम, कपडा, सुत का धागा, चमडे का सामान, नमक आदि सामग्री यहाँ भारत के अन्य भागो से आती है। यह सडक मार्ग भी भूस्खलन के कारण कई बार बद हो जाता है उस समय यहाँ इन वस्तुओ की कीमत कल्पनातीत बढ जाती है। सातवी योजना मे जिरिबाम तक सिलचर से रेलवे लाईन बिछाने की योजना है। यदि मणिपुर तक यह रेलमार्ग आ सका तो मणिपुर की आर्थिक अवस्था में निश्चय ही सुधार होने तथा औद्योगीकरण होने की सभावनाएँ बढ जाएगी तथा देश से कटा यह भू भाग भावात्मक दृष्टि से भी भारत से जुड सकेगा। विघटनकारी भावनाओ और दृष्टिकोण मे परिवर्तन की सभावना से इकार नही किया जा सकता। देखें कब वह दिन आता है। सम्प्रति मणिपुर मे जितना सामान बाहर से आता है उसकी तुलना में यहाँ से बाहर जाने वाला सामान बहुत कम होता है। इसलिए गाडी भाडा अन्य स्थानो से दुगुना होता है। रेल से जुडने पर कल कारखाना की स्थापना की सभावना है जिससे यहाँ से विभिन्न प्रकार की सामग्री बाहर जा सकेगी और आवागमन का वर्तमान असतुलन दूर होने से चीजें सस्ती होंगी।

●●●

यहाँ लोगो में वायु मार्ग यात्रा की मानसिकता विकसित हो चुकी है। जबकि यह यात्रा बहुत ही महगी पड़ती है, तब भी लोग वायुमार्ग से यात्रा करना अच्छा समझते हैं। प्रतिदिन की उड़ानो के लिए सदैव पूर्व आरक्षण आवश्यक होता है, वरना जगह मिलना संभव नही है। वायु यात्रा की मानसिकता की लोक प्रियता इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि यात्री धनी-मानी व्यक्ति ही नहीं बाहर के कुली-मजदूर तक होते हैं। भारत के अन्य प्रान्तों के नौकरी पेशा लोगो का कहना तो यह है कि वे जो कुछ कमाते हैं उसका एक बहुत बड़ा भाग वायुमार्ग यात्राओ पर खर्च कर देते हैं। प्रतिदिन समाचार पत्र तथा डाक भी वायुयान से आती है। वर्षा ऋतु में मानसून के सक्रिय होने के पश्चात् कई बार इम्फाल की उड़ाने रद्द हो जाती हैं।

मणिपुर में यातायात और परिवहन की स्थिति के विवेचन से स्पष्ट है कि यहाँ यह समस्या है। मणिपुर रेलमार्ग से नहीं जोड़ा जा सका है, अतः यहाँ सडको से ही ट्रको में सामान आता है, जो काफी महँगा साधन है। मणिपुर को खाद्यान व दालो के अतिरिक्त सभी चीजें बाहर से मंगवानी होती है। दालें, तिलहन, पैट्रोलियम, कपड़ा, सुत या धागा, चमड़े का सामान, नमक आदि सामग्री यहाँ भारत के अन्य भागो से आती है। यह सड़क मार्ग भी भूस्खलन के कारण कई बार बंद हो जाता है, उस समय यहाँ इन वस्तुओं की कीमत कल्पनातीत बढ़ जाती हैं। सातवी योजना मे जिरिबाम तक सिलचर से रेलवे लाईन बिछाने की योजना है। यदि मणिपुर तक यह रेलमार्ग आ सका तो मणिपुर की आर्थिक अवस्था में निश्चय ही सुधार होने तथा औद्योगीकरण होने की संभावनाएँ बढ़ जाएगी तथा देश से कटा यह भू-भाग भावात्मक दृष्टि से भी भारत से जुड़ सकेगा। विघटनकारी भावनाओ और दृष्टिकोण मे परिवर्तन की सभावना से इन्कार नही किया जा सकता। देखें कब वह दिन आता है। संप्रति मणिपुर में जितना सामान बाहर से आता है उसकी तुलना में यहाँ से बाहर जाने वाला सामान बहुत कम होता है। इसलिए गाडी भाड़ा अन्य स्थानो से दुगुना होता है। रेल से जुड़ने पर कल कारखाना की स्थापना की संभावना है जिससे यहाँ से विभिन्न प्रकार की सामग्री बाहर जा सकेगी और आवागमन का वर्तमान असंतुलन दूर होने से चीजें सस्ती होगी।